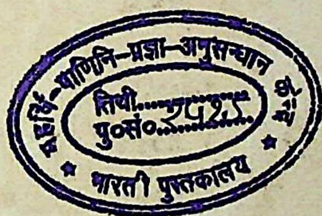

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु०सं०
भारती पुस्तकालय


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु०सं० 2595
भारती पुस्तकालय



॥ ओ३म् ॥ भूर्भुवः स्वः ॥

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

हे प्राण, पवित्रता और आनन्द के देनेवाले प्रभो, जो आप सर्वज्ञ और सकल जगत् के उत्पादक हैं हम आप के उस पूजनीयतम, पाप विनाशक विज्ञान स्वरूप का ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को प्रकाशित करता है। हे पिता आप से हमारी बुद्धि कदापि विमुख न हो, आप हमारी बुद्धियों में सदैव प्रकाशित रहें।

—*—

अथ

॥ स्वाध्याय मंजरी ॥

प्रभु की याद में रची

जन

दुर्गाप्रसाद

ने

प्रचार वेद कारणे

—:o:—

विरजानन्द प्रेस लाहौर

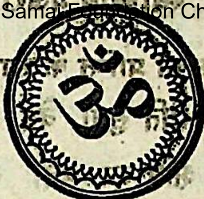
पहिली वार १००० प्रति } २७-२—१९१६ ई० { मोल ॥)

॥ भूमिका ॥

जैसा मनुष विचारता वैसा करता काम ।
खान पान बोलन चलन उद्यम आठौ जाम ॥
प्रातः बुरे विचार से धर्म कर्म गए भूल ।
सो सुधार को अवश है वेद पाठ शुभ मूल ॥
इस कारण बहु मंत्र का व्याख्या सहित अनुवाद ।
यहाँ किया स्वाध्याय को जिस से हो प्रल्हाद ॥
जिससे हो प्रल्हाद स्वास्थ्य आयुः बढ जावै ।
ईश्वर करै सहाय पूर्व पद पुनः दिलावै ॥
धर्म विना नहिं उठ जाति यह सच्चा साधन ।
समझदार स्वीकार करैंगे सो इस कारण ॥
इस में ऋग् के सूक्त नौं चौरासी हैं मंत्र ।
यजुर्वेद अध्याय इक जा में सत्रा मंत्र ॥
जोड एक सौ एक है वेद धर्म हो ज्ञात ।
भजन और उपदेश से मन प्रसन्न हो जात ॥

२७-९-१९१६ ई० **दुर्गा प्रसाद** मुतराज्जिम वेद लाहौर

नीचे लिखी पुस्तक विरजानन्द यंत्रालय लाहौर से मिलती हैं–



॥ स्वाध्याय मंजरी ॥





ईश्वर लक्षण

ऋग्वेद १ मंडल ११५ सूक्त

चित्रं देवानाम् उदगाद् अनीकं
चक्षुर् मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस् तस्थुषश् च ॥१॥

ईश्वर जा संसार की अद्भुत शक्तिः जान ।
सूर्य चन्द्र ओ अग्नि की आंख दिखैया मान ॥
व्यापक सू आकाश है जड़ जंगम संसार ।
सब का है वह आतमा ओ कर्त्ता जग-सार ॥

इस प्रकार वेद ने माना । जान लेव तुम चतुर सुजाना
जगत आतमा स्वतः सिद्ध है । प्रति बसन्त नूतन वस्तु है
नित प्रति जीव जन्तु को रचता । उचित काल तक पालन करता
जीर्ण वस्तु को फिर वह घड़ता । अपने राज में नाश न रखता
देखो जब तक वृक्ष है जीवै । डाल पात फूल फल होवै
जब उसकी शकती नहि रहवै । कोट जतन तें हरा न होवै
इसी भांति तुम जानो जग को । जब तक प्रभु की शक्ति उसको
रखत सजीव स्वयं इच्छा से । तब तक जन्म स्थिति लय भासे
इच्छा उसकी आप हि जाने । जो है मुनि सो यही बखाने

उसकी प्राप्ति के साधन

प्रभु जानन की रीति सुनो वेद वर्णन करत ।
ज्ञान से जाके शीघ्र दूर सबी संकट हुवत ॥

सूर्यो देवीम् उषसं रोचमानाम्
अर्यो न योषाम् अभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि
वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २ ॥

निश्चित वेदके ज्ञानसे होत ईशका भान ।
लिव हो ऐसी हृदय में नरकी नारि समान ॥
प्रात काल संध्या हवन सबके हित व्यवहार ।
बुरे कामसे दूर हो तड़क वेद विचार ॥

ये हैं पंच नियम आवश्यक । जो हैं निश्चित पाप विनाशक
वेद है ईश्वर ज्ञान का पुस्तक । मन में ज्ञान ज्योति उत्पादक
ईश्वर ज्ञान ज्योति सब मानी । जो हैं जगमें मुनि औ ज्ञानी
ज्योतिः को ज्योतिः देखत है । देखो सुन्दर कविः कहत है

सूर्यके तेजसे सूर्य ही भासत चन्द्रके तेजसे चन्द्र ही भासै ।
तारे के तेज से तारे ही दीसत विद्युत के तेजसे विद्युत प्रकाशै ॥
दीप के तेज से दीपक दीसत हीरा के तेज से हीरा ही भासै ।
तैसे ही सुन्दर आतम जानहु आप के ज्ञान से आप प्रकाशै ॥

वाके हृदय चांदना होवै । वेद पाठ जो अर्थ से करवै
जोत भए पर प्रभु का दर्शन । देह प्रफुल्लित करत हृष्ट मन
बिन विद्या विशेष नहि वस्तु । जाने हैं पृथिवी के जन्तु
ग्रहण ज्ञान होवै उस ही को । जो पढ़ता ज्योतिष विद्या को
भान ईश का इसी विधी है । जाकी पुस्तक वेद कही है

आठ विभूतियों की प्राप्ति

सुनो यारो जो रूहानी सिफत अब दिलमें आतेहैं।
लगे जब दिल उसी प्रभु से कि जिससे इल्म-पातेहैं॥

सप्त अश्वा हरितः सूर्यस्य
चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठम् अस्थुः
परि द्यावा पृथिवी यन्ति सद्यः॥ ३॥

नेकी ज्योतिः संमिलन अभिलाषा सत ज्ञान।
वेग हर्ष ओ नम्रता मिलैं तु निश्चय आन॥
यह करतार की दीप्तिः फैली है जग मांह।
स्वर्ग से उतरे जीव पर जब वह ध्यावै ताह॥

इस के माने से सब सुधरत। जीव मंघ ऐहिक सुख पावत
धर्म ज्ञान से करी दिखत है। फिर नाहि मानुष पाप करत है
आज काल जो पाप की वृद्धिः। जाकी वेद लोप से सिद्धिः
वेद ज्ञान का नहि बाधक है। प्रत्युत सब विद्या साधक है
जब तक वेद प्रचार रहा है। तब तक उन्नत देश कहा है
पुनः उसी प्रकार का होवै। पाठन पठन वेद जब होवै
कारण वही कार्य यह होवै। विद्या से यह निश्चित होवै
सो जो चाहो उन्नति अपनी। वेद ध्वजा के आवो शरनी

ईश्वर कृपा

न जानो इस से तुम भाई फ़कत शुभ कर्म काफी हैं।
नहीं है लोक यन्ता की कर्म फल नित्य माफी हैं॥

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन् महत्वं
मध्या कर्तोर् विततं संजभार ।
यदेद् अयुक्त हरितः सधस्थाद्
आ रात्री वासस् तनुते सीस्मै ॥ ४ ॥

परमेश्वर का देव पन और महत् तू जान ।
भर कारज को वीच में खीच लेत निज भान ॥
जैसे सूरज अस्त हो बन्द करत सब काज ।
पुनः रात अज्ञान की मोहित सकल समाज ॥

यही हमारा हाल हुवा है । मन में शुभ का गर्व उठा है
अभ्युदय की उच्च अवस्था । भरत खंड में भई, समस्था
उस के कहीं दीख नहि पड़ती । जो पोथी भारत की कहती
उच्च शिखर से ऐसा फिसला । बहुत जतन भए पर नहि संभला
अब है केवल प्रभु की किरपा । सम्यं वनन में हमरी आशा
तिमिर अज्ञान को नष्ट करेगा । हमरी व्यथा दरिद्र हरेगा

तदेवालंबनं श्रेष्ठं तदेवालंबनं परम् ।
तदेवालंबनं मत्वा भविष्यति महत् सुखम् ॥

आ जावो शरणागत प्रभु की । वही वाटिका अक्षय सुख की
तुमरे सब पुरुषा थे जैसे । तुम भी वनो सभ्य ही वैसे

ईश्वर का दान

सूर्य उदय से आश होवै है दृढ जीव को ।
करेगा प्रभु विकाश हम पर अपनी कृपा को ॥

तन् मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे
सूर्यो रूपं कृणुते द्योर् उपस्थे ।

अनन्तम् अन्यद् रुशद् अस्य पाजः
कृष्णम् अन्यद् हरितः संभरन्ति ॥ ५ ॥

दर्शनार्थ रवि शशी के देवी सूर्य प्रकाश ।
करत स्वर्ग से आपनो और तिमरका नाश ॥
बल अनन्त राजस प्रघट तामस गुण हर लेत ।
निद्रा हर सब लोक की क्रिया वन्त कर देत ॥

निद्रा अपने आप जात है । जब हि भानु का उदय होत है
इसी प्रकार पाप मल जावै । मन में ब्रह्म ज्ञान जब आवै
दुष्ट करम की निद्रा भागै । भद्र करन की इच्छा जागै
ईश्वर बल से पूरित तन हो । उसकी ज्योतसे दीपित मन हो
विद्या सब आजावें तत्पर । सम दृष्टि हो जावै सब पर
न कोउ नीच न ऊंच दिखावै । उन से घृणा न नीक सुहावै
सब हैं संतति उस स्वामी की । द्यावा पृथिवी रचना जाकी
वही सबों का रक्षक स्वामी । रोग निवारक अन्तर यामी

प्रार्थना

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य
निर् अंहसः पिपृता निर् अवद्यात् ।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥

हे ईश्वर सब देव गण सहित विश्व करतार ।
रक्षा करियो पाप से ओ अपजस हरतार ॥
स्वीकृत हो यह प्रार्थना रवि शशी करैं महान ।
अदितिः सिन्धुः भूमि द्यौः कर हैं हमरा मान ॥

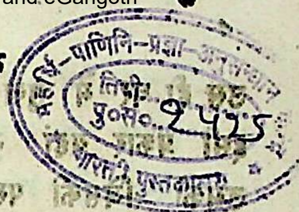
कैसा है यह उत्तम भाई। वेद धर्म जीवों के तांई
नीच से हमको ऊंच बनावें। अन्धकार से ज्योति में लावे
मूरख से विद्वान बनावें। दया धर्म के काम बतावे
इस की साक्षी सब के मन हैं। जो पृथिवी पर बसते जन हैं
मित्रो फैलावो तुम इस को। आर्य देश में सब के सुलको
असत मतों का निराकरण हो। जिस से दिव्य सूर्य पूजन हो
बिसर गए अवतार के पूजक। जो है सत्य विश्व उत्पादक
यहां होय फिर उसकी पूजा। छोड देवता जो हो दूजा

मंगलं भगवान् विष्णुः मंगलं सर्वे जन्तवः।
मंगलं वेद संघो यस्मिन् भूयात् महत् सुखम् ॥

——:o:——

॥ भजन ॥

हे जगदीश दयामय करता। संकट मोचक सब दुख हरता
रहो प्रसन्न सदा हे स्वामिन। हम हैं शरण तुमारे निशदिन
जब लग ते सत रूप न जाना। तब लग पाप में सुख बहु माना
नहिं जाना त्वं सदा विराजत। जगत गति औ मनमें भ्राजत
यह संसार ते कार्यालय है। नित्य काम होता सब यां है
भूमि बनत औ पर्वत खुदते। वृक्षादि सिंचकर नित बनते
तारा गण अति वेग से भ्रमते। कोइ कदापि न अनियम चलते
काल का आदि अन्त कुछ नाहिं होदिग विस्तार चहुं ओर अमितहै
इस अनंत तें सृष्टि गृह में। नहिं निरोध कोई किसी क्षण में
हम अज्ञान से आपको जाना। दूर कलख औ मनुष सभाना
पर ईश्वर त्वं जीवन मूरी। पूर्ण ज्ञान इच्छा करो पूरी
बातें पिता पुत्र का नाता। दीख पडे त्वं हो जग माता
विद्यामान औ गत जीवों में। कृपया बोलो मार्ग आपस में
यातें सिद्ध होय नित जीवन। मिटे मरण दुख होय सुखी मन
वही आज्ञा हरि मन में हेगी। तब किरपा से पूरण होगी



ऋग्वेद १ मंडल ९८ सूक्त

॥ ओम् ॥

ईश्वर की आज्ञा पालो

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम
राजा हि कं भुवनानाम् अभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वम् इदं विचष्टे
वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥

जो नेता है विश्वका वाकी आज्ञा मान ।
वह राजा है सृष्टि का औ भूषण तू जान ॥
यहां वहां सर्वत्र है व्यापक वह करतार ।
सूरज द्वारा जगत का करता है निसतार ॥

को नहि जानत इस सत्ता को । जिसने देखा है दुनिया को
सुखी वही होते बालक हैं । पिता की जो आज्ञा पालक हैं
घर का कारज तब चलता है । जब गृहपति शासन पलता है
सबको ज्ञात इतिहास से होता । पिता पुत्र की रार से खोता
मनुष राज को अरु वैभव को । विद्या धर्म कला कौशल को
यही बात इक कवी कही है । सो सुनलो तुम झूठ नहीं है

सांई बेटा बाप के बिगरे होत अकाज ।
हिरनाकुस अरु कंस को गयो दुहन को राज ॥
गयो दुहन को राज बाप बेटा के बिगरे ।
दुषमन दावादार नष्ट भये कारज सिगरे ॥
यही हुआ है हाल यहां का देखो भाई ।
जब से पूजा मनुष दिया है ईश भुलाई ॥

ईश्वर आत्मिक पिता हमारा । अरु वाको गृह जग है सारा
जग वासी सुख पाते तब तक । ईश हुकम पै चलते जब तक

उस ही घर में सुख वरसे है। जो स्वामी आज्ञा पाले है
इसी प्रकार यहां तुम जानो। सुख चाहो तो आज्ञा मानो
उसकी जिसकी परजा सारे। निश्चय जानो मित्र हमारे
अनुचित राग रंग जो होते। रात पाप करने में खोते
निरबल औ मूरख वन गए हैं। सब की दृष्टि से गिर गए हैं
धरम छोड़ अधरम करते हैं। भांग सुरा पीपी मरते हैं
यह नहि है इच्छा ईश्वर की। जैसा कहती ऋचा वेद की

ईश्वर की आज्ञा

देवानां भद्रा सुमती ऋजूयतां
देवानां रातिर् अभितो निवर्तताम्।
देवानां सख्यम् उपसेदिमा वयं
देवा न आयुः प्रतरन्ते जीवसे॥

विद्वानों की मतिको मानो। उनके करमों को शुभ जानो
उन ही के मित्तर बन जावो। नीक गुणों से आयु बढावो
देश धर्म है बुद्धि विहीना। त्याग गए जो श्रुति प्रवीना
अब जग का प्रबंध कुछ सुनिये। और कृपा कर मनमें गुनिये
सूरज किरण तेज अरु अग्नी। सिंचित करते हर क्षण धरणी
वही जीव वृक्षों में लाते। जिनके फल को सब नर खाते
स्नायु पुष्टि जब नर में पाते। तब नारी आमाशय जाते
भोजन द्वारा जीव आते हैं। नर तन में पुष्टिः पाते हैं
वहां मास दश तनू बढाते। फिर बाहर पृथिवी पर आते
नर नारी ईश्वर के सेवक। उस के सृजन कार्य के प्रेरक
वनस्पती अरु पशु मानुष में। यही नियम प्रवृत्त सब जग में
जिस प्रकार जीव जग आते। उसी प्रकार स्वर्ग को जाते
सूरज किरण राह रोशन है। जीवों का आवन निकसन है

विधुत ओ चंबुक की शकती । वह भी सूरज से ह्यां आती
पृथिवी में परवरतन करती । जीवन के लायक है रखती
वायू आर्णव जल हैं चलते । सूर्य किरण से सब हैं पलते
रोगादी निवृत्त हो जाते । जहां सूर्य के रश्मी आते
ऋतुवां सब सूरज से होतीं । खेती वाढी उस से पकतीं
विना सूर्य जीवन नहि जग में । यही वार्त्ता कही है ऋग में

ईश्वर व्याप्ति

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां
पृष्टो विश्वा ओषधिर् आविवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः
स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २ ॥

भूभी विविध वनस फती अन्तरिक्ष के लोक ।
व्याप रहा सब में वही उसे न रोक न टोक ॥
अपने पूरण वल साहित स्वामी ज्योति स्वरूप ।
विद्यमान् हर जगह में सब रूपन प्रति रूप ॥
हमरी वह रक्षा करै दिन ओ रात्री वीच ।
सुख देवै हम सबन को मार के हिंसक नीच ॥

राज्य श्रेष्ठ वो ही होते हैं । जिन में राजा प्रजा मिलै हैं
जहां प्रजा नहि देखैं राजा । वहां न कोई सुधिरे काजा
दुखी रहैं वहां जीव अरु जन्तू । उन्नत होत न कोई वस्तू
अतः राज सब नष्ट भए हैं । पीछे दुर गत छोड़ गए हैं
राज्य नाहि ईश्वर का ऐसा । पढो समझ कर वेद संदेसा
अन्तम सूक्त ऋग का अबलोकन । मातृ भाव का करै निरूपन
ईश राज्य में सभी समाना । नींच ऊंच कोई नहि माना

दीन मुहम्मद औ नसरानी । मनुष की समता सबने मानी
जब तक भाव रहा यह उनमें । तब तक बाढ़े इल्मो फन में
नीच ऊंच जब आई उन में । हम समान गिर गए इक क्षण में
याते वेद कहे है तुम से । ईश्वर आज्ञा पालो मन से
यही हाल सब का तुम जानो । इसमें न कोइ संशय मानो
सब सुख है आज्ञा पालन में । मान महत ईश्वर शासन में
जैसे नियम यहां चलते हैं । वो ही तारों में मिलते हैं
ईश्वर राज्य का पार नहि है । पर अनुशासन सार यही है
घरमें बैठ प्रार्थना करलो । उसके गुण तुम मनमें धरलो
यथा शक्ति वैसे बन जावो । फिर जगमें तुम सुखको पावो
यह है मंशा व्यापकता की । सारी सृष्टी के करता की
ज्ञान ध्यान से ईश्वर दर्शन । होत मनुष को मानो प्रियजन
दर्शन से शक्तीं सब बढतीं । फेर न उस पर आपद पढतीं

सर्व शक्ति से हर जगह व्याप रहा करतार ।
सब जीवों के पास है सिमरो वार वार ॥

सब की भलाई

वैश्वानर तव तत् सत्यम् अस्तु
अस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३॥

विश्वनाथ तव नियम है जगमें हमरे हेत ।
जब हम बुद्धीमान हों तब प्रतिष्ठा देत ॥
ईश्वर हमरे याग को कृपा से कर स्वीकार ।
सूर्य चन्द्र वत शुभ्र हो हमरा सब व्यवहार ॥

पृथिवी ओ आकाश के दिशा काल के मांय ।
हमरे इस स्तोत्र से सकल जीव सुख पांय ॥

वेद यही है नियम बताता । यातें जीव यहां सुख पाता
ईश्वर ने है जगत बनाया । अरु उस का सब काम चलाया
मनुष पशू में भेद यही है । मनुष में अधिक होत बुद्धि है
सो बुद्धी शिशु में कम होती । शनैः शनैः अनुभव से बढती
जब तक बाल बुद्धि रहती है । वह नहि कारज कर सकती है
सदा आसरा अन्य का लेवै । ज्ञान के अर्थ गुरु पद सेवै
ज्ञान से जब बुद्धि है जागै । मनुष कार्य तब करने लागै
बालापन के खेल को त्यागै । ईश्वर से नित बुद्धि हि मागै
मात पिता गृह कारज सोपैं । सुख संपत प्रयत्न से होवैं
बुद्धिमान करता गृह चिन्ता । और कष्ट को कुछ नहि गिंता
कैसे मैं गृह जन को पालूं । और द्वार से भूक को टालूं
गृह विद्धिहि से कीरत पाता । पुत्रादिन को नेक बनाता ।
उसे देख कर और सुधरते । धर्म से सब कारज को करते
इस विधि सब जग सुख ही पाता । दुख तो नाम मात्र रह जाता
वेद त्याग से दुख बढ जाता । ज्ञान धर्म प्रेम घट जाता
जिन में वेद धर्म जागा है । उन से पाप दूर भागा है
जब तक वेद के ऋषि हुए हैं । प्राणी दुख से नहीं मुए हैं
अब हम यह वर मागें शंभो । करुणा कर दीजे जग बन्धो
जब तक सूर्य चन्द्र चमके हैं । ग्रह अरु तारागण दमके हैं
जब तक दिशा काल मे बसते । भू अरु जो आकाश में भ्रमते
तब तक यश जो हमने गाया । सब को मंगल हो जग राया

—०—

परमात्मा पूजन

सब के मन यह चाह पावें इन्द्रिय सुख बहुत ।
जावें स्वर्ग के मांह जब त्यागें इस देह को ॥

ये न यस्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन आयात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न ऋष्यति ॥ मनुः

जिस पर पुरुषा चल गए और पागए मोक्ष ।
वह है सच्चा मार्ग यां जिस से मिले परोक्ष ॥
वेद कहे सन्मार्ग में परमात्मा को ध्याव ।
यातें यां सुख संपदा अन्त में मोक्ष को पाव ॥

जो जग में विद्वान बढे हैं । वेद जिनों ने खूब पढे हैं
सो पूजत उसको जो व्यापक । भू आकाश में है गण नायक
अब सुनलो पहिले मण्डल की । ऋचा छ्यानवें ऋगवेद हि की

ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ९६

स प्रत्नथा सहसा जायमानः
सद्यः काव्यानि बळ् अधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्
देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ १ ॥

होत प्रघट हैं प्रेम से मन में श्री भगवान् ।
तत क्षण देते रत्न सब विद्या धन अरु मान ॥
महत तत्त्व अरु बुद्धि का जो है मित्र महान ।
अरु जो देवे संपदा सो पूजें विद्वान ॥

ईश्वर की लय जिसको लागै । तिस में दैव्य ज्योति है जागै
ईश्वर ज्योति से हो उजियारा । मन में से तम जावे सारा
नेक काम उसको दिखते हैं । पाप दूर उस से रहते हैं
कुशल बुद्धि से सब कुछ पावै । जो शुभ इच्छा मन में आवै

जैसे आस्तिक के मन आई। तक्षक वंश को लिया बचाई
सो हि कथा भारत ने गाई। सुनो चित्त दे मेरे भाई
महाराज जनमेजय जी ने। पाप जु तक्षक ने थे कीने
उन के पितु को वध करने से। एक ब्राह्मण के कहने से
उस के दण्ड हेतु करवाया। सर्प सत्र जामें जलवाया
नाग वंश जो दुख देता था। और प्रजा का सुख हरता था
भगनी सुत राजा तक्षक के। आस्तिक मुनि थे भार्गव कुल के
नाग पति तक्षक को बचाया। सत्र में जाय स्तोत्र सुनाया
जासे ऋत्विज अरु महाराजा। भए तुष्ट अति सहित समाजा
वर मागन को आज्ञा दीनी। आस्तिकने यह यांचा कीनी
महाराज अब इसको करिये। और बन्द दुख सबका हरिये
ऋत्विज संमति से राजा ने। किया जु चाहा था आस्तिक ने
ऐसे महा यज्ञ का रुकना। जामें राज्य नीति का चलना
अभि मत था सब जनके मनसे। हुआ एक बालक याचन से
ईश्वर की हि कृपा थी भाई। नहि तु बाल की कहां सुनाई
शुभ इच्छा पूरण करता है। ईश्वर दयावान भरता है
आप हि हमको विद्या देता। पाप ताप सब है हरलेता
वह सब ठांव उपस्थित हेगा। सो सबकी प्रार्थना सुनेगा
ऐसा देव ज्ञानी पूजत हैं। यासें सुख संपत पावत हैं

स पूर्वया निविदा कव्यतायोर्
इमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च
देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥२॥

आदि काल से प्रजा को मनन शील करतार ।
करता है उत्पन्न वह वेद ज्ञान अनुसार ॥
भूमि और आकाश में वह ईश्वर बलवान ।
पूर रहा है तेज को सो पूजैं विद्वान ॥

अद्भुत ईश्वर की रचना है । देखो जग जो खूब बना है
हर व्यक्ति को पूरा पाते । जब हम उस में दृष्टि लगाते
वृक्षादी जो भोजन खाते । निज स्थान में उस को पाते
पक्षी लोग न खेती करते । पर खुश बन्धु सहित हैं रहते
मनुष सृष्टि इन से अदभुत है । जैसा कृत से होत विदित है
नगर कला विद्या की बृद्धिः । जल वायू के नाव की सिद्धि
उस के बुद्धि महत के द्योतक । कोई वरणन करे कहां तक
ज्ञान शक्ति सब ठौर भरी है । वाने प्राकृत वस्तु करी है
वह ईश्वर की ताकत जानो । वह है कर्ता निश्चित मानो
वह अवनाशी श्री मघवन हैं । जिनैं सिमिरते शिक्षित जन हैं

तम् ईडत प्रथमं यज्ञसाधं
विश आरीर् आहुतम् ऋंजसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृपदानुं
देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥

हे सब सज्जन संघ वर पूजो श्री भगवान ।
जो देवों में आदि हैं याजक कृपा-निधान ॥
उनको ही सब सिमरते वह हैं स्तुति के योग्य ।
वही अन्न दाता महा देत निरन्तर भोग्य ॥

ईश्वर से कोई बडा नहि है । जो दिखता सो घड़ा वही है
नही कोइ है उसे मदद की । अलख रीति से वस्तु जगत की

रचत रात दिन है वह स्वामी। सब देखै हैं अन्तर यामी
देह देवता सब निर्बल हैं। उसके आगे वही प्रवल हैं
नहि इन्द्र को किसी ने जीता। उनकी शक्तिः सर्व गृहीता
सिद्ध कार्य उसके वल होते। विना मिहर उसकी सब खोते
पूजा योग्य वही स्वामी है। नाम जपन में वह नामी हैं
सब कोई उस ही को ध्यावैं। अपनी अनो कामना पावैं
वही हमारा अन्त का दाता। नित्य निरंजन हमरा पाता
जो ऐसे मालक के सेवक। जगमें वह हैं यश के लायक
जब तक एक देव को पूजा। तब तक हम सम नहि था दूजा
पुन ईश्वर के शरणे आवैं। स्वर्ग राज पृथिवी पर लावैं

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां
यज्ञस्य केतुर् मन्म साधनो वेः।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं
देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥

धन का दाता ईश है वही देत सुख धाम।
श्रेष्ठ कर्म दर्शक प्रभु आत्मज्ञान शुभ काम॥
जो मुक्ती को चाहते सज्जन विद्यावान।
सो ईश्वर को पूजते हमें देत धन दान॥

पुरुषारथ से धन कह कोई। प्राप्त होय यह निश्चय होई
अन्य भाग्य को अवश बतावैं। तहां कथा हम एक सुनावैं
एक समय दो मनुष सफर में। रहै रात को इक मंदिर में
वहां नहीं था कुछ खाने को। लगे सोचने वह लाने को
उन में से इक बोला श्रम कर। ला कुछ भोजन सोवैं खाकर
उत्तर दिया भाग जो होगा। झां वैठे वह आय मिलेगा

यह कह कर वह लेट गया तब। फिर श्रमी जन मांग नगर सब
भोजन को जब ला के आया। मित्र नु भोजन हेतु जगाया
कहा आलसी भोजन करले। श्रम फल को तु मन में धरले
उत्तर दिया सुनो हे मिन्ता। मुझको तो कुछ नहि थी चिन्ता
भाग्य हि था सो आय मिला है। और आपको श्रम हि फला है
इस विधि भगवंत सब को देता। उन के संकट को हर लेता
जितने जग में लोक दिखें हैं। हमें प्रभु वहां गृह देवें हैं
वही धर्म के कार्य दिखाते। जिन से हम बहु सुख को पाते
आत्म ज्ञान लाभ की मनशा। पूर्ण करत है वह जगदीशा
ऐसे प्रभु को वह सेवत हैं। मोक्ष ज्ञान को जो चाहत है
विद्या में जो बहुत निपुण हैं। सब को अरु सिखलावत गुण हैं

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्
विदद् गातुं तनयाय स्वर्वित्।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्
देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥४॥

वह निर्माता विश्व का और पुष्टि की खान।
धर्म मार्ग पुत्रादि को दरशत मुक्ति निधान ॥
वही प्रजा को पालता रचिता भू आकाश।
उसे पूजते देवता जिस का विश्व विकाश ॥

जिस अकाश में सब बसते हैं। जहां स्वांस प्राणी लेते हैं
उसकी तोल ईश का बल है। जो रहता सर्वत्र अटल है
उस में प्राणी पुष्टि पावैं। जिस से व्याधी सब नस जावैं
धर्म मार्ग को वह दिखलाता। जापै चल के जन सुख पाता
बचपन से जब नेकी करते। तब हमरे संतान सुधरते

उसकी कृपा हमें पालत है। वह सब सुखकी विधि जानत है
अति अद्भुत है उसकी माया। जिसने भू आकाश बनाया
मनुज सोच में यह नहि आवै। जग कारण को वही बनावै
है सिद्धान्त स्पष्ट वेद का। ईश्वर से है जन्म जगत का
कहे वेदान्त यह सुन भाई। "जन्माद्यस्य यतः" दरसाई
करैं कृपा तो समझें इसको। नहि तो सोचो मानैं किसको
केवल जो बुद्धी को मानें। जग के कारण बहु अनुमानें
यह विश्वास जीव का हैगा। सबका कारण एक हि होगा
बुद्धि जीव में अन्तर नहि है। बुद्धि जीव की एक शक्ति है
बुद्धि बहुत जो कारण मानैं। अटल सत्य को वह नहि जानै
शंकर की हैं यही गवाही। देखो उनकी विजय में ताही

" यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते
यस्मात् जातानि जीवन्ति यत् संविशन्ति तद् ब्रह्म "

ब्रह्म वही है जिसने पैदा। किया सकल जग और हवैदा
जब तक उसकी इच्छा राखै। अन्त समेटे वेद हि भाषै
जानैं चाहो विषय सृष्टि का। देखो मेरी भाष्य भूमिका
ऐसे प्रभु को पूजत ज्ञानी। पूजो उसे जो मुक्ति पानी

नक्तोषासा वर्णम् अमिम्याने
धापयेते शिशुम् एकं समीची।
द्यावा क्षामा रुक्मो अन्तर् विभाति
देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥५॥

Note—शिशुः तनूकर्त्ता (श्यति तनू कः) समीची सम्यग् गच्छति भू आकाशः

भली भांति सब भ्रमत है दिशों बीच संसार।
अहर्निश बहु रीति से दरसावैं करतार॥
जैसे भानु चमकता अन्तारिक्ष के मध्य।
तैसे सारे विश्व में दीप्यमान है बोध्य॥

जब देखैं हम तारा गणको। भान होत निश्चल आंखन को
पर वास्तव में भ्रमत वेग से। ज्ञात होत है यह ज्योतिष से
ग्रहण लेख से सिद्ध भया है। उन में नियम न टूट गया है
गति औ ध्वनि ऊपर होती हैं। पर सुनने में नहि आती हैं
जैसे बैठा मनुष रेल में। नहि देखे है गति चलने में
दूर के वृक्ष भागते मानै। अरु अपने को निश्चल जानै
पर जो ठाडे सड़क किनारे। इमें देखते जाने हारे
इसी भांति पृथिवी के वासी। नहि पाते ध्वनि गति आकासी
जोगी जन को भान है ऐसा। पैथे गोरस को था जैसा
स्वर्ग में नाच गान होवत हैं। यमी लोग उसको जानत हैं
स्वर्ग जान भगवत की मिहफल। राग रंग हो जिसमें हर पल
नृत्य करैं तारा गण निस दिन। भ्रमण में गावैं हैं ईश्वर गुण
बने सात सुर सातो ग्रह से। चार ताल हैं चारो गति से
नृत्य कहैं काल क्रम गति को। गान कहैं काल क्रम धुनि को
तारों के ध्वनि और गमन में। काल क्रम है पाया उन में
बहुत वेग से कोई भरमैं। कुछ आहिसता कोई घूमैं
धूम केतु की गति है न्यारी। चन्द्र की गति है अति प्यारी
सूर्य करत आतिश बाज़ी है। बिजुली मेघ आब पाशी है
वरण सके को अद्भुत लीला। आप सोचलो चिन्तन शीला
वेद समीची इस विधि गावैं। जिसमें ज्ञानी अति सुख पावैं
सर्व लोक लोकान्तर माई। प्रभु जागन की करत बधाई

जब महाराज शयन को जाते । सर्व लोक तब लय होजाते
नाम रूप सब ही मिट जावैं । परमानू हो लोक विलावैं
प्रभु की केवल ज्योतिः जागै । जब चेतन की ताडी लागै
ऐसे प्रभु को जो पूजत हैं । उन को वस्तु सब सूझत हैं

नू च परा च सदनं रयीणां
जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्
देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥

सब रत्नों का कोश है सदा प्रजा का धाम ।
तीन काल के वस्तु का रक्षक अरु आराम ॥
सबको देता सुख सदा राज पाट धन धाम ।
वाके पूजन से हुवत सफल हमारे काम ॥

जो अग्नि ह को भौतिक मानैं । क्षा निवास का अर्थ न जानैं
भला कोई अग्नि में रहता । फिर अनर्थ वह काहे करता
अग्नि जगत् निवास माना है । जिनने सत्य अर्थ जाना है
अग्नि ईश्वर रक्षक सब का । भौतिक अग्नि दाहक सब का
भौतिक सब को भस्म हि करता । कोई पदार्थ नाहि है बचता
जो भौतिक अग्नि को पूजत । उनको भी वह अवश जलावत
यातें बहुधा वेद में अग्नि । ईश का वाचक है नहि वाह्नि
सो तुम पूजो दैव्य अग्नि को । और बढाओ निज विभूति को
सब रत्नों की निधि है ईश्वर । ताहि हृदय से भज निस वासर
जो होगये उ होने वाले । सब के ईश्वर धाम सुखाले
जो स्वभाव अनुसार चलैं हैं । उने अन्त में ईश मिलैं हैं

जीव आप से नेकी करता। पर कुसंग से अघ में गिरता
पर ईश्वर नहि नाश करै है। जाको वह इक वार घड़ै है
वासे राक्षित सब हि वस्तु हैं। वाके आश्रय जीव जन्तु हैं
ऐसे भगवत को पूजत हैं। सत विद्या से जो भूषित हैं
लाभ मान बल ज्ञान की सिद्धि। इस में पावैं सब हि की वृद्धि

द्रविणोदा द्रविणसस् तुरस्य
द्रविणोदाः सनरस्य प्रयंसत्।
द्रविणोदा वीरवतीम् इषं नो
द्रविणोदा रासते दीर्घम् आयुः ॥ ८ ॥

व्यवहारिक जो द्रव्य है और जो भोग के योग्य।
सब धन दाता देत है जो है जन के भोग्य ॥
स्त्री पुत्र प्रिय वन्धु पशु अन्न यान गृह भूमि।
दीर्घ आयु नीरोगता कृपा सिन्धु के ऊर्मि ॥

परमेश्वर है धन का दाता। और वही है उस का पाता
सो धन दो प्रकार का होता। एक जो व्यौपार में लगता
वह आता अरु जाता रहता। कभी हानि लाभ कभी लाता
दूसर जो वर्त्तन में आवै। खान पान गृह कार्य चलावै
दोनों धन जो मनुष पास हैं। ईश्वर की भ्रकुटी विलास हैं
क्षण में आवैं क्षण में जावैं। सुख दुख हमरे हाथ लगावैं
गृह भूमि आदिक संपत्ति। दीर्घ आयु सुख प्रभु पद भक्ति
भाग्य से हि सब मिलते यह हैं। हुकम ईश का भाग्य कहत हैं
कुल संतान सुशीला नारी। लड़का लड़की आज्ञा कारी
यथा योग्य विद्या से शोभित। देश अर्थ तन मन धन अर्पित

यह अमोल ईश्वर की बरकत। जासु कृपा से होवे प्रापत
सो आजावो प्रभु की शरणी। देख बढ़ो अपने की करणी

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो
रेवत् पावक श्रवसे विभाहि।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

ईश्वर तेरे भृत्य हैं हम मांगैं कर जोर।
रहो प्रकाशित बुद्धि में पाप बन्ध को टोर ॥
श्रेयस भोग्य सुदान कर दिव्य दृष्टि दो ईश।
सूर्य चन्द्र आदिक हमैं शुभ हों हे जगदीश ॥

प्रेम भक्ति से ईश्वर सिमरो। जिसकी रचना जगत है सिगरो
मन हि मंत्र का अर्थ विचारो। यथा शक्ति जीवन में धारो
नित्य मनन से ईश्वर ज्योतिः। मन में बहु प्रकाशित होती
दैव्य तेज से विद्या भासै। दुष्ट भाव सब जड़ से नासै
इस विधि ईश्वर अग्नि विकाशै। और जीव के अघ सब नाशै
शुद्धि अनन्तर वर वह मांगे। श्रेयस सुख को निश्चय पावै
सूर्य चन्द्र आदिक सुखकारी। हों प्राणी को जो हितकारी
सब से बरतै धृति अनुसारी। अरु ईश्वर का आज्ञा कारी
देखो कैसे ईश्वर गाया। और दैव्य मत को समझाया
देवों का यह मत दरसाया। जिस को मान सबन सुख पाया
इस पर विद्यावान चलत हैं। अपने जीवन सफल करत हैं
उन के पथ में दुख कछु नाहीं। सोच लेव तुम मन के माहीं
वेद छोड़ पुस्तक नहि कोई। माननीय धर्म हि विच होई

कैसे उच्च विचार बतावै। मानुष पशु को देव बनावै
मनुष जन्म का फल यह जानो। सृष्टि हि में ईश्वर पहचानो।
ईश भान से सर्व ज्ञान हो। दिव्य दृष्टि हो अति बलिष्ठ हो
अति उत्तम मत वेद भाषत है सुख के लिये।
नस जावैं सब खेद सुख से जीवैं सर्वदा॥

———

॥ सत्य उपदेश ॥

दया धर्म का मूल है पाप मूल बध जान।
तातें दया न छाडिये जब लग घट में प्रान॥
धर्म कहत हैं मनुष भलाई। जातें दुःख दूर होजाई
प्रीत बिना नहि होत भलाई। प्रीतयुक्त कर्म सुख दाई
प्रीत दया का अन्य नाम है। दया कर्म होत निष्काम है
इससे दया धर्म का कारण। इसको सदा रखो तुम सिमरण
बध समान पीडा नहि जगमें। यातें हिंसा निषिध योग में
पीड़ा नाम पाप का जानो। पाप नाम शैतान् का मानो
शब्द शितान का अर्थ सताना। देखो शब्दकोष ने माना
यातें पाप कर्म सब त्यागो। पापीयस से दूर हि भागो
नेकी करनेवाले धर्मी। बदी के कर्ता होत कुकर्मी
त्यजेद् धर्म दया हीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत्।
त्यजेत् क्रोधमुखीं भार्यां निस्नेहान् बांधवान् त्यजेत्॥
निर्दई धर्म को जल्दी छोड़ो। मूर्ख गुरु से मुख को मोड़ो
क्रोधी पत्नी नीक न लागे। प्रेम बिना संबंधी त्यागे
दुःख होये सब दूर जो मानुष प्रीति करैं
विद्या हो भर पूर यतन सबै निस दिन करैं

ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ५७

सक्रांति के दिन की उपासना

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये
सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपाम् इव प्रवणे यस्य दुर्धरं
राधो विश्वायु शव से अपावृतम् ॥१॥

नमस्कार जगदीश को जिस का दान महान ।
बढा और धनवान है अरु सच्चा बलवान ॥
उसका नहि कुछ अन्त है असहनीय सामर्थ ।
उसका धन सब ठौर है पूजक बल के अर्थ ॥
स्तुति ऐसी उमंग से करो कि जैसी धार ।
नीचे स्थल को जात है वह पहुंचे करतार ॥

जितना जग में धन दिखता है । ईश्वर उस सब का करता है
मूंगा मोती हीरा पन्ना । नीलम मानक चान्दी सोना
सब ईश्वर की कृपा हि देती । हमरे सारे दुख हर लेती
मनुष सहायक केवल ईश्वर । स्वर्ग राज से नहि कोई स्थिर
सके रोक को उसके बल को । जाने रचिया विश्व सकल को
उसी ईश की करो बन्दना । तुमरा है वह हृदय चान्दना
भक्ति तीव्र जब मन में होवै । तब ईश्वर सहाय जन पावै
जैसें वेग से वहै जल नीचे । उसी भांति विनय उठे ऊंचे
मन में ईश्वर पद चिन्तन कर । सब विषयों से चित्त हटा कर
तब धन अरु बल ईश्वर देवै । यातें बल बुद्धि ह बढ जावै
ईश्वर नित है शुभ का करता । सकल विश्व का वो ही धरता
उस बिन अन्य नहीं दुख हरता । हम सब का वह श्रेयस करता

अध ते विश्वम् अनु हासद् इष्टय
आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत
इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२॥

दरसावत यह विश्व सव ईश्वर बल प्रत्यक्ष ।
बुद्धिमान सव उसी को पूजत कर मन लक्ष्य ॥
उन के मन अनुराग ै प्रभु पद चिन्तै चैन ।
जैसे जल धारा वहत निम्न देश दिन रैन ॥
फिर ईश्वर सव कष्टको क्षण में करदे दूर ।
जिमु ज्योतिर्मय वज्र से करै वृत्र को चूर ॥

बुद्धि से जो जगत को देखैं । सव वस्तु हि से शिक्षा सीखैं
वह तो हम को सवक पढातीं । गो वेजान नजर हैं आतीं
देखो वादल भूमि को सिंचत । हवा पखेरु वीज को डारत
सूर्य घर्म से फूट हि निकसत । हवा उडा भूसा को डारत
दाना पक्षी गण चुन लेते । खेल कूद हरि नाम सिमरते
इस से खेती मनुष ने सीखी । और विद्या हि इस विधि देखी
इस विधि से जो जग अवलोकत । उने ईश के दर्शन होवत
जैसे प्रभु शुभ सवको करता । उस का दृष्टा नेकी करता
प्रभु खुश होकर संकट हरता । पाप ताप नित दूर हि रखता
पाप होत अज्ञान के कारण । ईश्वर है अज्ञान निवारण
सो नित ईश्वर गुण आराधो । ज्ञान पाय कर सुख को साधो
ज्ञान विना नहि सुख है जग में । ज्ञान हि भेद मनुज अरु मृग में
ज्ञान नाम विद्या बुद्धिः का । सो साधन ऋद्धिः सिद्धिः का
ज्ञान हि कारण है मुक्तिः का । सो फल है ईश्वर पूजन का

अस्मै भीमाय नमसा सम् अध्वर
उषो न शुभ्र आभरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेंद्रियं
ज्योतिर् अकारि हरितो नायसे ॥२॥

अरे जीव ईश्वर भगत सुन्दर गुण संपन्न ।
तेजस्वी जग पूज्य को कर नमः से प्रसन्न ॥
वह नहि तुम से चाहता नमस्कार से भिन्न ।
नमन शील जो जीव हैं उनसे रहै प्रसन्न ॥
सब के सुनने योग्य है उसका दैव्य महत्व ।
दिशा समान महान है संप्रेरक बुद्धित्व ॥

उषा नाम सूरज की दुहिता । अक्षरार्थ है दूरे निहिता
सूरज किरण दूर हैं जाते । सूर्य पूर्व वह उषा कहाते
रश्मि सूर्य से जन्म हि पाते । सूरज की लडकी कहलाते
जैसे रश्मि सूर्य से होती । वैसे हि ज्ञान ईश से होती
सो यह ज्ञान है उषा कहाती । जग में दया न्याय है लाती
उसका काम यह वेद बतावै । ईश्वर का भय काम में लावै
नमस्कार उसको नित करवै । प्राण किसी के व्यर्थ न हरवै
देह आत्मा पवित्र राखै । सब कामों में सत्य हि भाषै
बुरे काम सब नित परित्यागै । ईश्वर गुण सुनने में लागै
यातें ज्ञान बढे निस वासर । हो जावे वह मनुष दिवाकर
ईश्वर गुण विद्या के निधि हैं । सो उन्नति कारण सब विधि हैं
वह गुण हैं सब जग में फैले । जो चाहै सो अपने करले

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत
ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वद् अन्यो गिर्वणो गिरः सघत्
क्षोणीर् इव प्रतिनो हर्य तद् वचः॥४॥

हे जगदीश्वर सृष्टि के रक्षक वास महान ।
प्रजा सकल पूजा करत अति दयालु बलवान ॥
तेरे आश्रय रहत हैं तेरे हम सब लोग ।
तुझ समान दूजा नहीं हमरे पूजन योग ॥
जैसे पार्थिव वस्तु है पृथिवी को स्वीकार ।
वैसे हमरे स्तोत्र को करियो अंगीकार ॥

ईश्वर की स्तुति सब करते । उसके आश्रय चलते फिरते
वह है सब का वास अरु रक्षक । हम सब हैं उस के ही बालक
उसी की स्तुति हम करते हैं । अन्य को कभी नहि रटते हैं
जो कृत्रिम देवों को ध्यावैं । वह नहि विद्या धन बल पावैं
जो ज्ञानी सो हर गुण गावैं । ज्ञान बढा कर मुक्ति पावैं
इस वाणी से स्पष्ट विदित है । पूर्व में इन्द्र देव पूज्य है
पूर्वों का नहि अन्य देव था । इन्द्र देव सृष्टि करता था
अब पूजत बहु देइ देवता । वृक्ष पशु तडाग अरु सरिता
अवतारों की भीड मचाली । सत्य देव से मन किया खाली
यहां वहां शंशय में डोलत । गाल बजावत बंबं बोलत
आमिष भक्षी और शरावी । मृगया द्यूत क्रूरता सेवी
चोर लुटेरे अरु व्यभिचारी । बन गए पूजा के अधिकारी
विष्णु के अवतार सिखाए । विद्या वेद अरु धर्म मिटाए
अब उन के पूजक हैं पागल । मूर्ख आलसी निर्धन निर्बल

भ्रान्त मतों से यह होना था। मिटा दिया जो देश बना था।
अब भी भाई सोचो संभलो। ब्रह्म पूज के एका करलो।
प्रभु ने चाहा तो फिर उन्नत। होवोगे हो देश प्रफुल्लित

भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मसि
अस्य स्तोतुर् मघवन् कामम् आपृण।
अनु ते द्यौर् बृहती वीर्यं मम
इयं च ते पृथिवी नेम ओज से ॥ ५ ॥

हे ईश्वर सब शक्ति निधि तेरा तेज अनन्त।
वीर्य पराक्रम दया के अतुल कोश भगवन्त ॥
हे मघवन हम दास हैं भासय मारग सत्य।
हमरी धर्म की कामना पूरण करिये नित्य ॥
तारा जटित अकाश यह तेरा वीर्य महत्व।
तेरे भय से भूमि यह है संत्रास नमत्व ॥

धरणी विविध वृक्ष पशु आकुल। द्यौ तारागण विद्युत मञ्जुल
ईश्वर की माया प्रख्यापत। मुनि जन को विस्मय है प्रापत
ईश्वर में विश्वास की जड़ हैं। मनुजों में जो पढे अपढ हैं
परमेश्वर के बन्दे हम हैं। उसके बल से भरते दम हैं
जिनने उसका शरण है लीना। उनने जग वश में कर लीना
अरबी नबी विपत की बेला। अबूबकर था साथ अकेला
छिपै गुफा में तीन दिवस भर। साथी बोला भय पयगंवर
हटको छांड़ अरु शीघ्र सुलहकर। उन से बोले यों पयगंवर
अल्ला हमरे साथ मदद पर। मत डरपो उस पर निश्चय कर
यह कह कर वह बाहर निकसे। संग मित्र के छूटे शत्रु से

विजय हुई वेदर के रण में। शत्रु परास्त हुए इक क्षण में
ईश्वर पर विश्वास का फल था। विजय मुहम्मद जो निर्बल था
सब आशा वह पूरण करता। धर्म अनुकूल जो मनुष है रखता
उचित है उसको प्रभु गुण ध्यावै। ईश्वर पर विश्वास दृढावै
द्यौ अरु भू की विद्या जानै। जासे सच्चा प्रभु पहिचानै
मनको द्यौवत दीप्त बनावै। भू वत नमता सहल दिखावै
और सुनो इसकी दृढता को। राम विभीषण की वार्त्ता को
रावण रथी विरथ रघुवीरा। देख विभीषण भयउ अधीरा
नाथ न रथ पद नहि पद त्राणा। क्योंकर जितव वीर बलवाना
अधिक प्रीति उर भा संदेहा। बंदि चरण कह सहित सनेहा
सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना
शौरज धीर जाहि रथ चाका। सत्य शील दृढ ध्वजा पताका
बल विवेक दम पर हित घोरे। क्षमा दया समता रज्जु जोरे
ईश भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना
दान परशु बुधि शक्ति प्रचंडा। वर विज्ञान कठिन कोदण्डा
संयम नियम शिली मुख नाना। अमल अचल मन तूण समाना
कवच अभेद्य विप्र पद पूजा। यह सम विजय उपाय न दूजा
सखा धर्म मय अस रथ जाके। जीतन कहं न कबहुं रिपु ताके

महा अजय संसार रिपु जीत सकै सो वीर।
जाके अस रथ होय दृढ सुनहु सखा मतिधीर ॥—तुलसी दास

त्वं तम् इन्द्र पर्वतं महाम् उरुं
वज्रेण वज्रिन् पर्वशश् चकर्तिथ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः
सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६ ॥

इन्द्र परम ऐश्वर्य वन धर्म वज्र से युक्त ।
पाप तिमिर को काट कर करते हमको मुक्त ॥
पुनः अमृत रस पिवाते जो था तम से वन्द ।
सत्य है तेरा बल विभु सब को दे आनन्द ॥
केवल तेरी दया है जो हम को सुख देत ।
विद्या स्त्री धन धाम पशु और दुःख हर लेत ॥

जैसे सूर्य जलद तम नाशै । वर्षा कर कृषि वृक्ष विकाशै
वैसे भगवत अघ तम नाशै । ज्ञान जीव में पुनः प्रकाशै
यातें प्राणी होय पवित्तर । ईश्वर को परजा का मित्तर
जब तक दुष्ट भाव रहैं मन में । तब तक वह ईश्वर चिन्तन में
नहि समर्थ जावै पापों में । रमत रहै अनिष्ट कर्मों में
जब मन से ईश्वर को ध्यावत । अपने करने पर पछतावत
अरु शुभ कर्मों में दृढ होवत । तव अवश्य दुख टारत भगवत
ईश्वर है सर्वत्र विराजत । और न जीव हि कवहूं त्याजत
सो अपने घर बैठ के पावो । जब ईश्वर पद मन में ध्यावो
इत उत जाना जन्म गवाना । मूर्ख संघ से कुछ नहि पाना
ईश्वर पर विश्वास हि रखना । उस में दृढता उत्पन करना
हर कारज में उसे चिंतना । देते हम को स्वर्ग में वसना
विन विद्या ईश्वर नहि भासै । हृदय का तम विद्या नासै
विद्या सृष्टि नियमहि कहावैं । सो सृष्टि देखन हि से आवैं
इस से संसारहि को देखो । ईश्वर नियम वहां से सीखो
फिर आयुः वल बुद्धि बढेगी । मरणान्तर मुक्तिः होवेगी
ज्ञान बिना नहि मुक्तिः भाई । शंकर ने यह मुक्ति वताई

—०—

ईश-आवस्यम् इदं सर्वं
यत् किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा
मागृधः कस्य स्विद् धनम् ॥ १ ॥

जो कुछ है संसार में उसमें व्यापक ईश ।
सो जो जीव ज्ञां करत है वह देखै जगदीश ॥
मत चाहो धन अन्य का अपने श्रम से नित्य ।
भोग करे संसार में धर्म से करके कृत्य ॥

देखो मुख है एक मनुज के । दो हैं हस्त भरण को उस के
जब तक बल हाथों में हेगा । तब तक वह भूखा न रहैगा
जो हाथों से श्रम कर खाते । उने रोग प्रायः न सताते
कहते हैं इक रोगि धनी था । उसने वैद्य नु जो कि गुणी था
बुलवाया जो रोग हटावै । उस की चिन्ता शीघ्र मिटावै
उस ने बहुत उपाय किए पर । तनक न लाभ हुआ खाने पर
बहुत औषधी जो अद्भुत थीं । करीं विधी वह जो तांत्रिक थीं
इस प्रकार वह द्रव्य गवाया । उस के हाथ न कुछ भी आया
वैद्य भाग्य से इक तब आया । उसने अजब इलाज बताया
श्रम कर अपनी रोटी खावो । शुभ कारज में धन हि लगावो
जब कुछ दिन उसने अस कीना । तनू भई तब रोग विहीना
यही त्यक्त का अर्थ यहां है । जिससे उत्तम और कहां है
श्रम का फल ईश्वर देनी है । जीव धर्म उस की करनी है
लूट मार है धर्म निशाचर । श्रम कर खाना धर्म मनुज वर
जो तालीम द्वेष फैलावत । वह लड़की शैतान कहावत

पाप कहैं शैतान की लड़की । जिससे आर्य प्रजा है भड़की
वेदाध्ययन जगत में लावो । दूर ववीलन मार भगावो
कच्चे धर्म अन्य के पढ कर । विगड़ गए सन्तान ऋषीश्वर

कुर्वन्न् एवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

जो जन अपने हाथ से करता है निज कर्म ।
सो जीवै शत वर्ष तक फल है वैदिक धर्म ॥
यही सत्य का मार्ग है या में नहि कछु पाप ।
इस पर चल के प्राणि सव पावैं ईश मिलाप ॥

श्रम फल की उत्तमता महती । एक कथा भारत की कहती
एक ब्राह्मण तीन दिवस में । भीख मांग कर लाया घर में
सह कुटुंव खाने जव वैठा । तव इक भिक्षुक घर में पैठा
ब्राह्मण ने भोजन को पूंछा । वह तत्पर भा कह कर अच्छा
ब्राह्मण की भार्या यों बोली । अपना भोजन भर के झोली
इसको तुम अतिथी को देवो । अपना आप पेट भर खावो
बहुत कहे पर ऐसा करिया । पर भिक्षुक का पेट न भरिया
फिर स्नुषा का फिर पुत्तर का । पेट भरन को उस अतिथी का
भोजन दीना ब्राह्मण ने तब । अतिथी बोला करिये वस अव
उस के मुख धोने के जल में । नकुल पूंछ भीगी उस पल में
वह सुवर्ण मय हुई उस क्षण में । नकुल गया तव करु के रण में
यज्ञ युधिष्ठिर ने जव कीना । अरु लाखों को भोजन दीना
उन के प्रक्षालन पानी में । न्योला लोटा याग भूमि में
पर न वाल इक भा कंचन का । व्यर्थ गया श्रम सव लुंठन का

सो श्रम एक धर्म आज्ञा है। तत्पालन वर्धक प्रज्ञा है
धन बाढै अरु रोग भगावै। अन्त को प्रभु दर्शन करावै

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
ताँस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥३

जहां अन्धतम नित्य है रवि शशि उदय न होंइ।
जावैं ऐसे लोक कों जो आतम-हन होंइ॥
ज्ञान शून्य यह योनि हैं उन में दुःख महान।
छली जीव जावैं वहां कर यां से प्रस्थान।

जल थल में कृमि कीट बहुत हैं। जो दुख में दिन रात मरत हैं
उन में ज्ञान ज्योति न दीपै। जो सुख का साधन पृथिवी पै
इस से तो अच्छा सोना है। जामें कुछ नहि दुख पाना है
आत्म भाव है ज्योति हि बोधक। जिसका हनन निरोधन वाचक
सो जो ज्योति हि को नहि चाहैं। रहना उने अन्ध तम माहैं
जैसी जिसकी अभिलाषा है। वैसी भगवत वर लाता है
ज्ञानी जन जो ज्योति जगावै। उस में उस की ज्योति समावै
सो वह तो द्यौ लोक हि जावै। अरु पापी दुख तम में पावै

सब से बुरा अज्ञान जिस में कुछ नहि भासता।
दूर रहै बुधिमान सदा बढावत ज्ञान को॥

अनेजद् एकं मनसो जवीयो
नैनद् देवा आप्नुवन् पूर्वम् अर्षत्।
तद् धावतोऽन्यान् अत्येति तिष्ठत्
तस्मिन् अपो मातरिश्वा दधाति॥४॥

जीव आत्मा अगम है मन से है अति शूर ।
इन्द्रिय उस तक जात नहि रहता उन से दूर ॥
यदि इन्द्रिय उस तक चलैं वह नहि आवै पास ।
जब वह ठहरै आप में ईश्वर जग करै भास ॥

जो व्यापक है तन में सारे । उस को इन्द्रिय सकैं न टारे
वह इन्द्रिय से शीघ्र चलत है । उसे न कोई पकड सकत है
इन्द्रिय उस के देह समाना । देह ने नहि जीव को जाना
जीव चैतन्य शरीर जड है । देह घटित अरु जीव सुघड है
इन्द्रिय कोमल भाग हैं तन के । उन में गुण नहि हैं चेतन के
नहि इच्छा नहि मन है उन में । नहि जानन की शक्ति ह तन में
इन्द्रिय उसके अस्त्र शस्त्र हैं । मनुष के जैसे खडग वस्त्र हैं
जैसे यह सब दूर होजाते । वैसे इन्द्रिय पृथक कहाते
स्वतः शक्ति इन्द्रिय में नहि है । वह केवल हतयार सदृश है
जब आत्मा इन्द्रिय से मिलता । उसका कारज तब सिध होता
इन्द्रिय पृथक पृथक साधन हैं । कार्य पृथक के अर्थ जतन हैं
जैसे जब जी मिलै हस्त से । तब वह पकड हि वस्तु हस्त से
हस्त में ग्रहण शक्ति नहि होती । वह केवल आत्मा में रहती
सो अन्तर इन्द्रिय अरु जी में । उतना जितना भू अरु द्यौ में
इन्द्रिय संग जीव जब होवै । इन्द्रिय जन्य ज्ञान हि होवै
प्रभु ज्ञान से शून्य रहत है । जो आनन्द हि हमें देत है
प्रभु ज्ञान से जीव स्थित हो । प्रकाश तब अन्तः अद्भुत हो
जिस से जीव सबको देखत है । सृष्टि भान मन में होवत है
सो जो दमन शील जन होते । ओ प्रभु का चिन्तन नित करते
उनको ज्ञान ईश अरु जग का । होता है नाशक संशय का

तद् एजति तन् नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तद् अन्तरस्य सर्वस्य तद् उ सर्वस्यास्य बाह्यतः॥५

जग में जो गति दीखती उसका कारण ईश।
सब तारागण हैं भ्रमत व्यापत हैं जगदीश॥
अज्ञानी को भासता ईश्वर सब से दूर।
ज्ञानी जन हैं देखते प्रभुहि हृदय में पूर॥
वह अन्दर संसार के अरु बाहर है व्याप्त।
जो जन उसको ध्यावता ताहि होय वह प्राप्त॥

ज्ञान हि से जब हम देखै हैं। दो वस्तू प्रतीत होवै हैं
इक जड है दूसर गति उन में। जिस से वह घूमत व्योमन में
निश्चलता स्वभाव जड का है। यातें गति नहि गुण उसका है
जहां कहीं पत्थर जो होता। सदा वहां वह निश्चल रहता
जब हि वहां से फेंका जावै। तब वह सदा चला हि जावै
उस को भू आकर्षण तत्पर। खींच हि लावै अपने स्थल पर
यदि भू में नहि हो आकर्षण। तो उस का नहि रुकेगा भ्रमण
जो रोकन को कुछ नहि होवै। तो गति सदा हि चलती रहवै
यातें गति इक वस्तु पृथक है। उस से सारा विश्व भ्रमत है
उसको ईश्वर का जानो बल। जो प्रेरत है तारा मण्डल
ईश जीव मनुज को अलख हैं। ये चैतन्य जड से पृथक हैं
ईश्वर चेतन सब में व्यापक। जीव अरु जडका केवल पालक
ईश्वर सूनु जीव को जानो। जड को पाद पीठ तुम मानो
व्यापकता का यही प्रयोजन। जीव करै ईश्वर का खोजन
अति आनन्द ईश मिलने में। सुख है वही मोक्ष पाने में
ज्ञान पूर्ण हो ईश मिलन से। फिर कलेश जावैं सब मन से

पूजो इक ईशान बाहर भीतर जान कर।
होगे तब हि महान सब पृथिवी के लोक में॥

यस्तु सर्वाणि भूतानि-आत्मनि-एवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥ ६॥

जो अपने सम जानता जीवों को सब अन्य।
अरु अपने को उन सदृश सो है जन चैतन्य॥
भूत सब हि हैं ईश में जो है सब का वास।
और ईश है हृदय में देखत सब प्रयास॥

जो अपने सम और को जानै। अरु अपने को उस सम मानै
वह जन सब में श्रेष्ठ कहावे। सब लोगों में आदर पावै
वह जन संघ का भूषण होता। अरु सब जनको लाभ हि देता
वह है सब का सत्य हितैषी। और किसी का वह नहि द्वेषी
जो सबको रक्षा हो वह करता। उन के हानि दुःख सब हरता
सब को ईश्वर सुतवत जानत। उन से प्रेम अरु न्याय हि वर्त्तत
सब के दुख में दुख वह मानै। सब के सुख में सुख को जानै
सहज हृदय से सब में देखत। ईश्वर दया प्रेम है भासत

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि-आत्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वम् अनुपश्यतः॥७

सब जीवों को जब मनुष जानत आप समान।
तब नहि उसको किसी में प्रीति अरु शोक महान॥
एकसा सब को देखता किसी में राग न द्वेष।
भ्रातृ भाव से वर्त्तता सब से और हितेष॥

जब तक वस्तु ज्ञान न होई। तब तक उसे न चाहे कोई
यदि दुख दे तो उसको त्यागै। यदि सुख दे तो उसमें लागै

तत्त्व बोध जब सब का होवै । तब मन में समता दृढ होवै
सम दर्शन से सब नश जावैं । राग द्वेष जो मन में आवैं
ज्ञानी को लोहा अरु सोना । इक समान है उनका होना
कंचन हानि से वह न रोवै । अरु न समय अर्जन में खोवै
ज्ञान जो संपत जीव की हैगी । उस का नित वह रहता भोगी
ज्ञान रमण वैकुंठ निवासा । उस में नित है ईश्वर भासा
ईश्वर दृष्टि ह में जग सारा । सम है राग द्वेष से न्यारा
सो जो सच्चे ईश्वर पूजक । वह सब लोगों के शुभ चिंतक
प्रभु की उन पर कृपा दृष्टि है । ज्ञान अरु सुख की नित वृद्धि है
उनका चलन मोक्ष दिखलाता । भव सागर के पार लगाता
यातें ऋषि मुनि सच्चे नेता । प्रभु ढिग जावैं संघ समेता
उन का ज्ञान यथार्थ सहारा । जग सिन्धु तरने को हमारा
उन ने ब्रह्म ज्ञान दरसाया । यातें हम ने मोक्ष हि पाया
इस से ज्ञां नहि दान बडा है । मनुष जन्म बहु सफल भया है

जो जानै जग मांहि औरों को अपने सरला ।
सब मानै हैं ताहि उस जनको भूषण महत ॥

स पर्यगात् छुक्रम् अकायम् अव्रणम्
अस्नाविरं शुद्धम् अपापविद्धम् ।
कविर् मनीषी परिभूः स्वयंभूर्
याथातथ्यतो ऽ र्थान् व्यदधा च्
छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ १० ॥

जो सम दर्शी मनुष है सो पहुंचे प्रभु पास ।
जो बल निधि अरु देहविन बिन नाडी विन्यास ॥

अमर अशुद्धि से पृथक ज्ञान बुद्धि भण्डार।
सर्वाध्यक्ष निराश्रय सच्चा जग करतार ॥
कारण से सब जगत को करता है बहु रूप।
सदा विराजत हृदय में सब देखत जगभूप ॥

जिसने यह संसार रचा है। उसका वर्णन वेद ऋचा है
वह नहि परिमित देह में आता। सब हि ठौर है नित्य विधाता
उसे देह की लोड नहीं है। बिना देह वह घड़त मही है
बिना देह धारण करने के। बन वाये पुस्तक पढने के
दिया ज्ञान ऋषियों को उसने। जग में गाए वेद जिनों ने
बिना हस्त अरु पाद किया है। सुख साधन अरु हमें दिया है
पर्वत वृक्ष पशु अरु पक्षी। फल भोजी अरु आमिष भक्षी
सबको बिना शरीर रचा है। ज्ञानी कारीगर सच्चा है
इसी लिए सर्वज्ञ कहाता। पिता हमारा जगत विधाता
अव्यय अमर का कारण सुनलो। सुन्दर कवि की साखी पढलो

जो उपजै विनशै गुण धारत सो यह जानहु अंजन माया।
आवै न जाय मरै नहि जीवत अच्युत एक निरंजन राया।
ज्यों तरु तत्व रहे रस एक हि आवत जात फिरै यह छाया।
सो पर ब्रह्म सदा शिर ऊपर सुन्दर ता प्रभु सों मन लाया ॥

जो उपज्यो कछु आय जहांलग सो सब नाश निरंतर होई।
रूप धरयो सो रहै नहि निश्चल तीनहुं लोक गिनै कह कोई।
राजस तामस सात्विक जे गुण देखत काल ग्रसे पुनि वोई।
आप हि एक रहै जो निरंजन सुन्दर के मन मानत सोई ॥

एक सही सब के उर अन्तर ता प्रभु को कहु काहि न गावै।
संकट मांहि सहाय करै पुनि सो अपनो पति क्यों बिसरावै।

चार पदारथ और जहां लग आठहु सिद्धि नवो निधि पावै ।
सुन्दर छार परै तहि के मुख जो हरिको तज अन्यको ध्यावै ॥

पूरण काम सदा सुख धाम निरंजन राम हि सिरजन हारो ।
सेवक होय रह्यो सबको नित कुँजर कोट हि देत अहारो ॥
भंजन दुःख दरिद्र निवारण चेत करै पुनि सांझ सवारो ।
ऐसो प्रभु तज आन उपासक सुन्दर हो तिन को मुख कारो ॥

ईश्वर जीवन मूल जगत का । जैसे मृतिका मूल घड़े का
भव में तन से तन निकसत है । चेतन से चेतन आवत है
सो जो चेतन पशु में भासत । ईश्वर चेतन को प्रति पादत
नहि चेतन है जड से उपजत । जड में ज्ञानहु वृथा हि खोजत
कालान्तर में जड नहि होवै । चेतन जो सुख दुख को सेवै
जड अधीन चेतन के पाया । प्रभु ने जिस ने ज्ञान सिखाया
सो चेतन अध्यक्ष जगत का । धारण पालन करता जिसका
जासु क्रिया बुद्धि वल पारा । नहि पावै यह जगत पसारा
अपने तेज में आप विराजै । सदा हमारे शुभ को साजै
मन बिच ऐसे प्रभुको पूजो । और न ध्यावो कोई दूजो

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये ऽ संभूतिम् उपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यां रताः ॥९

जड पदार्थ को शास्त्र में कहते प्रकृति मूल ।
सो विभक्त दो भाग में सूक्षम अरु स्थूल ॥
असंभूतिः है सूक्षम अरु संभूति स्थूल ।
असंभूति परमाणु हैं संभूतिः जग पूल* ॥ समूह
असंभूति अव्यक्त है अरु संभूति व्यक्त ।
उन दोनों के ज्ञान से होता है जन मुक्त ॥

परमाणु हि अव्यक्त हैं उनको कहैं विनाश ।
व्यक्त हि जगत स्थूल है वही वरुण का पाश ॥
विद्या संभव नाम हैं संभूति हि के जान ।
अन्य का नाम असंभव और अविद्या मान ॥
असंभूति है अन्ध तम तिस पीछे संभूति ।
सो बनजावै अन्ध तम पायकर स्व प्रसूति ॥
असंभूति जो सेवते सो पावैं हैं अन्ध ।
संभूति प्रिय अन्ध तम सो हि नीक प्रवन्ध ॥
भगवत सबकी आश को पूरण करता नित्य ।
याते शुभ इच्छा करो यही वेद का सत्य ॥

जो प्रत्यक्ष वाद है भाई । केवल उस में प्रकृति हि गाई
प्रकृति भिन्न कुछ अन्य न माना । विश्व रचन है जासु बनाना
स्वयं सिद्ध है प्रकृतिः मत में । उससे उत्पति सकल जगत में
प्रकृति से सब जगत है निकला । क्या पर्वत क्या अम्बुद माला
वृक्ष लता कीट कृमि प्राणी । पशु मनुष्य जो बोलत वाणी
जीव ज्ञान युत उपजा जड से । जड वत नाशवान है इस से
अन्त में कोइ जीव न जड है । शून्य वाद की उत्तम जड है
सो प्रत्यक्ष वाद का खंडन । करता स्वच्छ वेद मत मंडन

जो मानैं प्रत्यक्ष और अलख नहि मानते ।
उन में नहि अध्यक्ष करता इस संसार का ॥

प्रकृति आदि परमाणु हि माना । मुक्ति कहावै ताहि समाना
पर परमाणु हैं कल्पित वस्तु । सोचै मन में विद्वान जन्तु
संभूति कहैं अच्छा बनना । सो है सृष्टि प्रभु का मनना
असंभूति उस का मिटजाना । सो प्रत्यक्ष ने मुक्ति माना
बिनाश कोई प्रकाश नहि है । सो हि अवस्था अन्ध कही है

परमाणु हि से सृष्टिः वनती। प्रजा उसे संभूति हि कहती
उसका नाम अन्ध तम जानो। स्थूल दशा अन्ध हि की मानो
सो परमाणु हि को जो मानैं। अन्धकार हैं तासु ठिकानैं
अरु जो संभूति प्रिय होते। वही अन्ध तम में हैं सोते
क्लेश कंट से जव जागैं गे। तव तेजो मय तन भोगैं गे
जिसकी जैसी इच्छा होती। वैसी उसको प्रापत होती
वेद की शिक्षा हो शुभ इच्छु। मे मनः शिव-संकल्पम् अस्तु

अन्यद् एवाहुः संभवाद्
अन्यद् आहुर् असंभवात्।
इति शुश्रम धीराणां
ये नस् तद् विचचक्षिरे॥ १०॥

दृष्ट अदृष्ट से पृथक है ब्रह्म सनातन नित्य।
ऐसा कहते तत्वविद यह निश्चय है सत्य॥
ज्ञान शून्य सव जड जगत ब्रह्म वोध का मूल।
ज्ञान सहारे जगत है जामें कछु नहि भूल॥

गुण जो स्थूल रूप में होते। वह उस के अवयव में होते
तैल तिलों से जो निकलत है। हर तिल में वह अन्तर गत है
तैल न एक रेणु दाने में। सो नहि पावो रेणु मनों में
सो चेतन है भिन्न जगत से। जगत असेव्य वेद के मत से
एक देव ब्रह्म हि की पूजा। वेद सिखावत पूज न दूजा
नाना देव मनुष जो पूजत। है अज्ञान सत्य नहि सूजत
एक हि केन्द्र सवों का होता। जो उत्पन्न जगत में होता
इस भांति प्रभु केन्द्र जगत का। पूज्य देव है वेद मत हि का

संभूतिं च विनाशं च यस् तद् वेद—उभय स ह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्या-अमृतम् अश्नुते ॥११

उत्पत्ति अरु नाश का जिसे बोध है सत्य ।
ज्ञानी वह नर अरु सुखी होवै है कृत कृत्य ॥
नाश ज्ञान से मृत्यु भय जावे मन से दूर ।
कोई नष्ट न होत है निश्चय हो भर पूर ॥
सर्ग बोध से विदित है जीव गति है अटूट ।
काल अनादि अनन्त में रहत निरन्तर कूट* ॥ *एकतत्व

ज्ञान वही होता है पूरा । जिसमें वनन मिटन का व्योरा
जिसको केवल तोड़ हि सकते । घड़ने की सामर्थ्य न रेखत
उसे ज्ञान नहि कहते पूरा । वह निष्फल है क्यों कि अधूरा
इस विधि वस्तु ज्ञान वढावै । तव आनन्द अटल को पावै
फिर जग तृष्णा जड़ से जावै । प्रभु समीप की मुक्ति ह पावै
सर्व ज्ञान मुक्ति कहलाता । उस का सुख न कथन में आता
जीव की सव शक्ति हो पूरण । गति स्वछन्द पाप सव चूरण
प्रभु आज्ञा फिर पालन करता । परहित कर सव के दुख हरता

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये ऽ विद्याम् उपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥१२

पुनः पूर्वोक्त विषय को स्पष्ट करत है शास्त्र ।
अविद्या विद्या पद इह भिन्न हैं शब्द मात्र ॥
अविद्यमान जो वस्तु है वाह अविद्या जान ।
विद्यमान जो जगत है विद्या उसको मान ॥

अविद्यमान है अन्ध सम उसमें सुख नहि लेश ।
विद्या क्षण भंगुर जगत जाको रमण क्लेश ॥

जहां उपस्थित वस्तु न कोई । वहां जाय कछु लाभ न होई
जैसे मनुष अंधेरे घर में । पावत कुछ नहि अपने कर में
कितना हि फिरै क्लेश हि पाता । दीप न लाने को पछताता
ज्ञान दीप है जीव के मांहि । जग में क्लेश वहुत विना ताहि
सो जो ज्ञान शून्य हैं जग में । दुख की वेडी उन के पग में
वह जो केवल जगत उपासैं । अन्य भिन्न व्यवहार न त्रासैं
लेना देना खाना पीना । हसना रोना ज्ञान विहीना
उसकी कथा रात दिन भाषैं । जगत पदार्थ हि को अभिलाषैं
सो जग दो दिन की है माया । अन्त को कुछ न हाथ हि आया
अन्ध के गर्त में डूबे मानो । उनें सर्वदा नष्ट हि जानो

अन्यद् एवाहुर् विद्याया अन्यद् आहुर् अविद्यायाः।
इति शुश्रम धीराणां य नस् तद् विचचक्षिरे ॥१३

ब्रह्म वाद जो वेद है वहां बूझ है भिन्न ।
जग सूक्ष्म अरु स्थूल से अय विद्या संपन्न ॥

ऋषि मुनि संगति यह भाषत है । ईश्वर पृथक वाहि भासत है
वह न स्थूल जगत है भाई । अरु नहि सूक्ष्म प्रकृति कहाई
व्याख्या की दसवीं ऋच देखो । वा अनुसार समझलो इसको

विद्यां चाविद्यां च यस् तद् वेदोभयं स ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतम् अश्नुते ॥१४

विद्या सृष्टि हि को कहैं प्रलय अविद्या जान ।
सृष्टि अरु लय ज्ञान से सब जन होत महान ॥

मृत्यु भय लय ज्ञान से मिट जावै नर युक्त ।
सृष्टि ज्ञान से प्रभु को जानौ अरु हो मुक्त ॥

विद्या नाम सृष्टि का जानो । लय परमाणु अविद्या मानो
प्रलय बोध जग नाश बताया । सो वास्तव में सूक्ष्म कहाया
भाव कदापि अभाव न होवै । लय में जग सुरूप को खोवै
सो जो नाश न होवै भाई । तो हम काहे को मर जाई
इस विधि नाश बोध से जावै । मन से मृत्यु भय सुख लु पावै
इसे अविद्या ज्ञान बखाना । वह परमाणु वाद अब माना
विद्या की पुस्तक सृष्टि हि है । उसका ज्ञान हि देत मुक्ति है
सृष्टि कार्य ईश्वर है कारण । इन का ज्ञान जीव प्रतारण
कार्य ज्ञान से कारण जानै । घट ज्ञान से मृत पहिचानै
इस विधि कार्य रूप सृष्टि इ से । कारण ईश विदित आप हि से
ईश ज्ञान से मुक्ति होई । वेद विदांवर जानत सोई
ईश्वर प्राप्ति मुक्ति कहाई । ईश अमरता वेद हि गाई
अस अमृत विद्या से पावै । मृत्यु अविद्या से नस जावै
जो विद्या से अन्ध हि जावैं । अविद्या कर्म काण्ड बतावैं
उनका अर्थ समीची नहि है । कर्म काण्ड तु अविद्या नहि है
ऊपर कहा अर्थ संगत है । वेद शास्त्र तत्व हि अनुगत है

वायुर् अनिलम् अमृतम् अथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ओं क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतं स्मर ॥ १५ ॥

परमेश्वर ने प्राण को अमर किया है नित्य ।
और करत इस देह का भस्म अन्त में सत्य ॥

वायु नाम ईश्वर का जानो । अनिल हवा प्राण हि को मानो
क्रतु कहलाता करने वाला । क्लिव है स्वर्ग धाम सुख वाला

कृत है वह जो हम इह करते। इन सबको हम नित्य सिमरते
इन के सिमरण से अघ नाशै। मन पवित्र अरु बुद्धि विकाशै
ओंकार उत्तम प्रभु नामा। सर्व सृष्टि है उस का जामा
उसे भजे सुख संपत पावै। और स्वर्ग जब इह मर जावै
ओंकार हि विद्या का दाता। पुत्र कलत्र अनामय पाता
वाह भजै मन हर्षित होवै। सारे काम में सिद्धि होवै
जग में मान महत को पावै। घर में सुख से आयु वितावै
ओंकार हि भजले मन चंचल। जिससे मिलै तुझे प्रभु निश्चल

ओंकार हि का जाप करते नित्य बुद्धि विमल।
नाशै सिगरे पाप मोक्ष अर्थ प्राप्ति करत॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज् जुहुराणम् एनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥१६

हे अग्ने देव त्वं विश्वानि वयुनानि स्थानानि धनानि च विद्वान् वेत्ता जानासि अतः अस्मान् सुपथा धर्ममार्गेण राये ऐश्वय प्राप्त्यै नय तथा जुहुराणम् कुटिलम् एनः पापं युयोधि निसारय यतः वयं ते नम उक्तिं नमस्कारं विधेम कुर्याम

हे ईश्वर तेजो निधे विद्या जोत अखण्ड।
सकल जगत को जानते सत्य–बोध–मार्तण्ड॥
हमरे मन की कुटिलता दूर कीजिये देव।
जिससे होकर शुद्ध हम चरण कमल तव सेव॥
धर्म मार्ग पर चला कर लेचल जित है सत्य।
सुख विद्या के धाम हैं अरु तव दर्शन नित्य॥

अनुपम जगदीश्वर हरि स्वामी । सकल विश्व के अन्तर यामी
जितनी सुख की दशा वखानी । उन सब के ज्ञाता अरु दानी
धर्म मार्ग को आप हि जानो । जो जावै जित स्वस्ति ठिकानो
उस से हमको ले चल स्वामी । हम निर्बल पापी अरु कामी
हमें शुद्ध कर बुद्धि बल भक्ति । देव कृपा कर ज्ञान की शक्ति
हो पवित्र तव दर्शन पावैं । नमस्कार का लाभ उठावैं
जिसको तू ने राह वताई । उस ने शुभ की करी कमाई
तू सच्चा हमरा है नेता । तू हि हमें सब कुछ है देता
क्या जाने इस देश निवासी । तुझे छोड क्यों अन्य उपासी
देह देवता जन्म हि धारी । झगडों में सब उमर गुजारी
वह नहि शंकर मत अनुसारी । लोक में पूजा के अधिकारी
जो जन्मा वह ईश्वर नहि है । क्योंकि सबका जनक तो वहि है
जब से ईश्वर पूजन छोडा । तब से देश का डूबा वेडा
भूमि संपदा मान बढाई । धर्म सुशिक्षा कीर्ति गवाई
दुख है बहुत सहा नहि जाई । दयानन्द औषध बतलाई
ईश्वर का पूजन कर भाई । जिसकी महिमा वेदन गाई

कृपा करो जगदीश हम पछतावै हृदय से ।
करिये दूर क्लेश सुख से वन्दैं चरण तब ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितं मुखम् ।
यो असौ आदित्ये पुरुषः सो असौ अहम् ॥१७
॥ ओं खं ब्रह्म ॥

सत्य रूप भगवान का मुख ज्योति की ओट ।
छिपा जीव की दृष्टि से निष्फल जतन हि कोट ॥

विना कृपा भगवान के दर्शन कोउ न पाय।
यातें भगवत आज्ञा पालन एक उपाय॥
परमेश्वर से सूर्य में भया जीव का पात।
हां से झां आवत रहत मरणान्तर उत जात॥
परमेश्वर के स्मरण से जब घर होवै ज्ञात।
तब फिर सूरज मार्ग से जीव ईश ढिग जात॥
जैसे पार्थिव लोक से है द्यौ लोक महान।
वैसे ईश्वर तेज मय सब संसार निधान॥
हृदय विर जत ईश है ताहि सिमर दिन रात।
दु:ख को शान्ति ह देंयगे कर विपदा प्रतिघात॥

हिरण्य नाम कंचन अरु ज्योति। अथवा विद्या और विभूति
इसे जगत पहिले बतलाया। जिसमें कंचन ज्योति समाया
सब विद्या के अन्तर गत हैं। सो विद्या का पात्र कहत हैं
परमेश्वर के मुख पर झलके। जिसकी द्युति से सब जग लषके
प्रकृति रूप माया का परदा। प्रभु के मुख पै पड़ा सर्वदा
सो जब मन माया को तरता। तब ईश्वर अवलोकन करता
योगाभ्यास से तीव्र होकर। माया को प्रज्ञान से तर कर
जीव मिलै ईश्वर ज्योति से। पूरण हो बल विद्या धन से
जन्म मरण फिर सब मिट जावैं। ब्रह्मानन्द महत सुख पावैं
मुक्ति पाय सब जग में विचरैं। सबकी पुष्टि शुभ में नित करैं
कैसा उत्तम धरम सिखाया। छल फरफन्द न तनक दिखाया
राज रंक सब के अनुकूल है। वेद धर्म हि विद्या मूल है
सो जो महा मूर्ख हैं जग में। वह नहि चलते इस मारग में
लूट मार कर कलह मचाते। भाइ भाइ का माल पचाते
मित्र शत्रु को नहि पहिचानैं। पुण्य पाप में भेद न जानैं

आडंबर में जीवन खोवैं। रोग बढा कर दुख से रोवैं
गुड्डा गुड्डी नाच तमाशा। वं वं कर सद्धर्म नु नाशा
मान प्रतिष्ठा धन उ विद्या। लोप भई अरु छाइ अविद्या
जग में हो रहि वहुत हसाई। अव तो जागो भोले भाई
ईश्वर को पूजो नित मन में। कि प्रसन्न हो करै अमन में
ईश्वर होव दयालु हम अज्ञानी पुत्र तव।
तू है बढा कृपालु स्वीकृत हो हमरी विनय॥

॥ ओ३म् ॥

* वन्दना *

नमामि शंकरं देवं ज्ञान विज्ञान दायकं।
योऽस्मान् सर्वदा पाति सुखं तेजो ददाति च॥

हे दुख भंजन सुख प्रद जीवन के आधार।
ज्योतिः अरु विज्ञान घन सकल जगत करतार॥
घट २ स्वामिन् प्रघट हो हरो तिमर अज्ञान।
साधू जन हिरदय धरत ते स्वरूप का ध्यान॥
महिमा अपरं पार है को कर सकत वखान।
सव का पोषण करत हो हे करुणा की खान॥
हे प्रभु दीन दयालु हरि नाशो सर्व पाप।
जिससे निर्मल होय के करैं तिहारो जाप॥
प्रभो आप के नाम तें दुख समस्त नश जाय।
बुद्धि ह वाढै निश दिवस मन परसन होजाय॥

॥ स्नीजन शुद्धिः ॥

सूर्योदय के प्राक तुम उठो शयन से नित्य।
भजन करो जगदीश का कर आवश्यक कृत्य॥

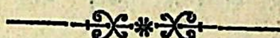
पवन हीन स्थान में उत्तम जल से अंग।
खदा वस्त्र से रगड कर शुद्ध करो प्रत्यंग॥
हाथ भिगो कर शिरज जड कर आद्रित जल लेश।
प्रति दिन कंगी करो तुम ढीले बांधो केश॥
केश अंग सप्ताह में साबुन से कर शुद्ध।
स्वच्छ वस्त्र धारण करो नित्य वदन निष्क्रुद्ध॥
शुद्ध आसन पर बैठ के समाधान कर चित्त।
ब्रह्म परायण होय के होव ध्यान प्रवृत्त॥

॥ संध्या ॥

हे देवी तुम भव जननी हो। पूरण धर्मांशा करती हो
सबको अनुकंपा से पालत। सदानन्द सब पर वर्षावत
हम चाहत इन्द्रिय वश होवैं। यातें ध्यान मग्न तव होवैं
यह पृथिवी शशि रवि अरु तारे। स्वर्ग स्थित जो सुख हैं सारे
भगवत तव रचना है अद्भुत। जिन के देखत मन हो प्रमुदित
आगे पीछे दहने वायें। नीचे ऊपर आप को पायें
जीवन अभय अन्न शोनित गति। कन्द मूल फल दाता हम प्रति
ज्योतिः रूप दिखावहु हमको। जो प्रकाश करता है सब को
सब भव स्वामिन् तव दर्शक है। धर्म हेतु हरि तू व्यापक है
पर स्वामिन् तुम अद्भुत ज्ञानी। महिमा जाय न तनक वखानी
सदा विराजत मन के भीतर। सर्व वस्तु से प्रिय से प्रिय तर
हे करतार विश्व उत्पादक। तव दर्शन है पाप विनाशक
सदा प्रकाशत मन के अन्तर। कृप पात्र कर बुद्धि निरन्तर
नमो नमो हर मंगल दायक। जय जय शंकर जगत विनायक

—:o:—

इस प्रकार स्व कृत्य को प्रति दिन कर द्विवार ।
धर्म सभ्यता सोच कर करो लोक व्यवहार ॥



* प्रातः काल भजन *

जय ईश्वर जय २ भव पालक जय सन्तन सुखदाई ।
दया हेतु सब जीवों के हित रचना नीक बनाई ॥
प्रबल प्रताप कहां लो वरणों महिमा बरनी न जाई ।
चार खान जग जीव उधारण वेद विमल यश गाई ॥
चरण कमल का ध्यान करत तें ऋषि मुनि शान्ति पाई ।
तेरा नाम जपन से शंभो पाप ताप मिट जाई ॥
हृदय स्वच्छ में ललित मनोहर झलकै तव प्रभुताई ।
जाकी ज्योत देख निरदई यम करुणा कर फिर जाई ॥
गणे गंधर्व नाग सुर नर मुनि सदा रहत लौ लाई ।
तव भक्ति का तनक विमल जल पिवत अधम तरजाई ॥
दुस्तर भव सागर तरने का यही है एक उपाई ।
ओंकार तरणी में बैठो हरि चरणन चित लाई ॥

* अपरं च *

हम अधीन दीन है आए ईश्वर शरण तिहारी ।
कृपा सिंधु दीनन के बन्धु हैं तव ज्ञान भिखारी ॥
जगतपति विश्वंभर रक्षक सकल विश्व हितकारी ।
हे ईश्वर हे अलख निरंजन हे गुरु ज्ञान अपारी ॥
कलि मल ग्रस्त भयो मन हमरो कासों कहैं पुकारी ।
तुम बिन अन्य नहि अघ त्राता क्षमा सिंधु माहितारी ॥
निशि दिन करुणा करत दयामय देत वस्तु गुणकारी ।
जो जो संकट परत हैं हम पर तिनें देत तुम टारी ॥

मात पिता मांगे तें देवैं किंचित् बस्तु प्यारी ।
पर परमेश्वर तुम देते हो विन याचत वह सारी ॥
जन्म से पूर्व मातृ स्तन में दुग्ध भरौ बलकारी ।
सब संबन्धिन के हिरदय में प्यार दियो अति भारी ॥
यह अनुराग हृदय उन सब के प्रभु है प्रीति तिहारी ।
नहि तो हमरे वृद्ध होन पर क्यों नस जावै सारी ॥
जगत करत है प्रीति स्वार्थसे क्या भरता क्या नारी ।
केवल विना प्रयोजन प्रभु जी प्रीति करत हो भारी ॥
पालन पोषण करत सर्व को क्या मूरख क्या ज्ञानी ।
ज्ञान प्रकाशक मुक्ति दायक जगत रचक हितकारी ॥
दुष्ट जीव को दण्ड के पश्चात् भव सागर देउ तारी ।
शुद्ध चतुर नर ज्ञान को पावत कृपा से प्रभो तुमारी ॥

* सायं काल भजन *

भव भय भंजन मोक्ष प्रदायक । जगदीश्वर प्रभु दीन सहायक
करुणा सिन्धु सकल भू पालक । पाप निवारक ज्ञान प्रकाशक
लोकादि सबको हरि देखत । प्राणी मात्र को सुख पहुंचावत
अन्ध गर्त्त में पशु जो रहते । तिने हरिः भोजन नित देते
पंगु अन्ध निर्वल पशु जेते । सब को पालत सुध बुध लेते
निर्भय हो सब ऐसे विचरत । जैसे वालक गोद में लोरत
घट २ मांहि नित्य जागृत हो । शीर्ष पै रक्षा हाथ धरत हो
मैं अति मुर्ख भाव नहि देखत । मोघाआशी चिन्ता में डूवत
तज मन विषय भोग तृष्णा को । प्रभु के शरण तू कर अपने को
जासे शुद्ध होय विज्ञानी । प्रभु देखै यह सन्त बखानी

* अपरं च *

जिन के मन में प्रभु प्रेम वसा । उन के उर राग न द्वेष रहा
जिन मातु पिता गुरु सेवा की । तिन तीरथ व्रत किया न किया

जिन किए उपकार मनुष्यों पर। उन संचय अर्थ किया न किया
जिन काम करे निष्काम सदा। उन योग अरु ध्यान किया न किया
जिने आत्म बोध उपलब्ध हुआ। उने सुख संसार हुआ न हुआ
जिनको अभ्यास है वेदों का। उने शास्त्री ज्ञान हुआ न हुआ
जिनने प्रभु को है मित्र किया। उन कपटी मित्र किया न किया
जिन का तन वहुधा स्वस्थ रहे। उने द्रव्य का लाभ हुआ न हुआ
जिन के घर नारी शिक्षित है। उने स्वर्ग का वास हुआ न हुआ
जिन की संतान सुशिक्षित है। उने जग में नाम हुआ न हुआ
जिनका तन स्नानसे स्वच्छ रहे। उन चंदन लेप किया न किया
जिन का कर दान से शोभित है। उने कंकन स्वर्ण हुआ न हुआ
जिनको विद्या ने पवित्र किया। उनका कुल उच्च हुआ न हुआ
जिनने है सत्य को गृहण किया। उन तप अनुष्ठान किया न किया
जिनने एक पत्नी व्रत किया उन ने ब्रह्मचर्य किया न किया
जिनको उद्यम से प्रीति रहे। उनके घर द्रव्य हुआ न हुआ

॥ सामान्य भजन ॥

उठो मित्रो बहुत सोए चडा विद्या का भानु है।
गई है रात यूरप से प्रफुल्लित देश सारा है॥
भरत खण्ड वासी मनुष नहि छोडत अज्ञान।
धन संचय में मरत हैं नहि विद्या पर ध्यान॥
अरे धन कभी रहता है बिना विद्या के पढने के।
विद्या तीसर आंख है शिव के मस्तक मांह।
जासे पण्डित देखते जो कुछ है जग मांह॥
यतन नहि जानते मूरख संचित धन के रखने के॥

मधु मक्खी दृष्टान्त है मूरख जन धन कोश ।
उने मार मधु लेत हैं जो रखते हैं होश ॥
तनक अबतो विचारो जी नहि बल होत विद्या विन ।
अर्थ करी ओ धर्म हक विद्या पढो महान ।
जिस से स्वर्ग में सुख मिलै अरु होवै यां मान ॥
वहुत ख्वारी उनोकी है जो जगमें नहि हैं मेधाविन ॥
विद्या शील व्यवहार से कभी न करो प्रमाद ।
जासे जग में कीर्ति मन में होत प्रसाद ॥
कहो क्या मान हुरमत से वढा संसार में धन है ।
धन वल के आधीन है वली होत धनवान् ।
यातें तन वल बुद्धि वल लाभ करो धीमान् ॥
शिथिलता वल ओ बुद्धि की तजो वढने का गर मन है ॥

* अपरं च *

ईश्वर कीजै कृपा हम अवल हैं । केवल तेरे हि वल से सवल हैं
नहि जानत हैं विद्या घनेरी । यातें जावै है मन की अन्धेरी
नहि आशा है अपने करम से । तेरे दर्शन मिलैं जिन के फल से
भूरि पाप जनम से किये हैं । यातें दर्शन से तेरे डरे हैं
तु हि आश्रय है केवल हमारा । तेरी महिमा है अकथ अपारा
तेरी ज्योतिः से सूरज प्रकाशे । और मन का तिमिर सव विनाशे
प्रीति सत्य से वाढै तभी है । होता दर्शन तेरा जव कभी है
विद्या सफला हो तेरी कृपा से । भाग्य जागै प्रभो तव दया से
तु हि भासा है ज्ञानात्मा की । जैसे भानु की ज्योतिः क्ष्माकी
तेरी विद्या से हम ज्ञान वान हैं । तेरी लक्ष्मी से हम ऋद्धि मान हैं

———o———

*** अपरं च ***

हे जगदीश दयामय करता। संकट मोचक सब दुख हरता
रहो प्रसन्न सदा हे स्वामिन। हम हैं शरण तुमारे निश दिन
जब लग ते सत रूप न जाना। तब लग पाप में सुख बहु माना
नहि जाना त्वं सदा विराजत। जगत गति औ मन में भ्राजत
यह संसार ते कार्यालय है। नित्य काम होता सब यां है॥
भूमि बनै औ पर्वत खुदते। वृक्षादि सिंचकर नित बनते
तारा गण अति वेग से भ्रमते। कोई कदापि न अनियम चलते
काल का आदि अन्त कुछ नहि है। दिग विस्तार चहुं ओर अमित है
इस अनन्त ते सृष्टि गृह में। नहि निरोध छेद किसी क्षण में
हम अज्ञान से आपको जाना। दूर अलख औ मनुष समाना
पर ईश्वर त्वं जीवन मूरी। पूर्ण ज्ञान इच्छा करो पूरी
यातें पिता पुत्र का नाता। दीख पढ़ै त्वं हो जग माता
विद्यमान औ गति जीवों में। कृपया खोलो मार्ग आपस में
यातें सिद्ध होय नित जीवन। मिटै मरण दुख होय सुखी मन
यही आश हरि मन में हैगी। तब किरपा से पूरण होगी

—:o:—

ब्रह्म सनातन को पूजा जिन ने
जु देता है रत्न अमोल हम को।
जो यज्ञ साधन प्रथम हमारा
जो त्राण देता महान अधम को।
जिसे सिमरते हैं ज्ञानी जग में
अपूर्व कवि जन जिसे स्तुति सुनाते।
जु तिन उपस्थित है सारे जग में
ज्ञान दिया कर हैं वही कहाते।

ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १२१

एकम् एव अद्वितीयं ब्रह्म (वहदानियत)

॥ ओम् ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिर् एक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्याम् उतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

विद्या लक्ष्मी का सजक भूतों का करतार ।
सकल सृष्टि का एक पति वह पालत संसार ॥
सुख स्वरूप जगदीश हि जो है हृदय में पूर ।
भक्ति ह से ध्यावैं हमैं रखै पाप से दूर ॥

विद्या ज्योतिः तेज कहावै । लक्ष्मी प्रकृति धन वसु जतावै
यह सब ईश्वर गुण हि बतावै । इन का स्रोतः गर्भ कहावै
सो ईश्वर सामर्थ्य है भाई । जिस से उस ने सृष्टि रचाई
वह है एक न दूजा कोई । रचन शक्ति न अन्य में होई
वही पूर्व था अब भी हैगा । और वही आगे हि रहैगा
उस की पूजा वेद सिखावै । जो स्वामी भू द्यु का कहावै
उस की पूजा चित्त में होती । जहां न अर्पत सोना मोती
उस के गुण चिन्तन कर मनमें । वेद मंत्र द्वारा अर्चन में
कारण इसका गूढ न जानो । देखो तेज में तेज समानो
आत्मा हि परमात्मा जानै । बिन चिन्तन जड नहि पहिचानै
फूल पुष्प तांबूल सुपारी । धूप दीप नैवेद्य हि सारी
नहि पहुचै परमात्मा तांई । भंगी चरसी आप हि खाई
ऐसी पूजा पाप बढाती । और लोक में दुख फैलाती

जैसा तीरथ पर देखत हो । क्लेश विना न कुछ आपत हो
वैदिक पूजा मनहि हटावै । माया से उ हर में लगावै
जित मन उत इन्द्रिय सब जावैं । मन विन इन्द्रिय काम न आवैं
इन्द्रिय से सब पाप हि होता । मन संध्या में प्रभु पहि होता
सो इन्द्रिय निरवल हो जावैं । और पाप से हमैं वचावैं
इस विधि वैदिक पूजा भद्रा । प्रजा योग्य चहु आढय दरिद्रा
भज हिरण्य गर्भ स्वामी को । जो धारत है द्यौ पृथिवी को

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छाया अमृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

सुख स्वरूप जगदीश हि मन में पूजो नित्य ।
जो डालै इस देह में आत्मा बल अरु सत्य ॥
उसकी आज्ञा मानते विद्वज्जन जग मांह ।
उसकी किरपा मुक्ति अरु मृत्युहि है सब ठांह ॥

पुरा कल्प में यह पूंछा था । परमेश्वर पदार्थ कह क्या था
आत्मानम् अन्वेष्य उत्तर था । इस से अन्य न उत्तम तर था
जो संबंध देह आत्मा का । वो हि विश्व अरु परमात्मा का
जीव बोलता पुरुष हि आत्मा । शक्ति विश्व यामक परमात्मा
नाम दूसरा जगद् आत्मा है । जिस से निकला जीवात्मा है
सो वह पिता हमारा हैगा । वह नहि कभी हमें मारैगा
वह नहि ऐसी वस्तु हि घडता । पीछे जिसे मिटानै पडता
कभी वनावै कभी मिटावै । निर्बुद्धि हि का काम कहावै
सो यह जीव है वेटा प्यारा । परमात्मा का जो है न्यारा
पिता पुत्र दो एक न होते । कोई मनुष समय हैं खोते

व्यर्थ वितंडा वाद रोप के । और निरर्थक ग्रन्थ बना के
हमरी जाति पिता की हैगी । अन्य युक्ति नहि यहां चलेगी
पिता पुत्र संवन्ध है हम में । बार बहु आया है वेद में
सो आत्मा का दाता प्रभु है । उस की आज्ञा जग पालत है
उस की शक्ति ह अपरं पारा । इच्छा हि जन्म मरण हमारा
पर उस के हम वेटी वेटा । जग में सब से प्रियतर झोटा
सो हम अमर न कुछ भी डर है । पर उस पर हमरा निरभर है
जब हम उस के पथ पर जावैं । तब सब सुख जीवन में पावैं
एक ब्रह्म श्रुति पूजा का । देव उपास्य नित्य है सब का
जो मंत्रों से पूजा करते । वह सुख से सर्वत्र विचरते
उसे छोड मत अन्य हि पूजो । जो चाहो मुक्ति प्रिय हूजो
मुक्ति समान न जीवन फल है । खिलता सर्व ज्ञान कमल है

यः प्राणतो निमिषतो महित्वा
एक इद् राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश् च तुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

जगत और जो जीव हैं उनका राजा एक ।
जिसका महिमा से सदा स्वतः सिद्ध अभिषेक ॥
वह ईश्वर सब पशुन पर राज करै है सत्य ।
उस का मन में ध्यान कर दुष्ट विचार निहत्य ॥

जीवत जागत जो हैं प्राणी । और जगत जहां वेद वाणी
सिद्ध संघ उच्चारण करते । मनुजों का अज्ञान हि हरते
उन सब का स्वामी अरु राजा । है जीवों के बीच विराजा

पुण्य पाप सब के प्रभु देखत। सदा शुद्ध कर उन्नत राखत
वह हमको सुख सदा हि देता। दुर्गुण हानिकार हर लेता
अन्त में सबको सुख हि देता। इच्छा शुभ की पूर्ति समेता
हो अन्याय न साथ किसी के। हैं सब बालक एक उसी के
उसकी महिमा यों भासत है। कि सब काम वह आप करत है
यद्यपि संग मरुद् गण रहते। पर वह असली काम न करते
अपने काम से सब देवों को। भूषित करता अरु यज्ञों को
तनक न पक्षपात वह करता। मंत्री लेखक भृत्य न रखता
सब का न्याय आप है करता। सत्य हमारा वह है भरता
न्याय शीघ्र ईश्वर है करता। प्राणी यदा यहां से मरता
तनक विलंब न कदापि होवत। सब कर्म फल दया से पावत
यथा खेल में सब हि खिलाडी। जिन में है नहि कोई अनाडी
अपना आप भाग हैं लेते। हार जीत में प्रसन्न रहते
वैसे यहां हि भगवत घर में। नाटक होता सब प्रहर में
खेलन हारे प्राणी जन हैं। खेल में उन के लग रहे मन हैं
श्रम पीडा का शोच न करते। कार्य हानि से तनक न डरते
अच्छे राज्य का यही तो फल है। लगा कार्य में विश्व सकल है
ऋद्धि सिद्धि संपन्न जगत है। सब का होता काम फलित है
ईश्वर कैसा अच्छा राजा। जो शासत है न्याय से प्रजा
उसकी आज्ञा पालन पूजा। अन्य न हमको कारज दूजा
सायं प्रातः हरि गुण चिन्तन। यथा शक्ति उपकार दीन जन

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

ऊंचे पर्वत हिम सहित सरिता सहित समुद्र ।
दिशा ईश के बाहु सम दर्शाते प्रभु भद्र ॥
प्रभु की महिमा ये करत हमरे हृदय महान ।
कोई अन्य उपास्य नहि देव हमें यह जान ॥
सो प्रिय जन जगदीश को सायं प्रातः नित्य ।
करो आह्वान हृदय में ता कि होव कृत-कृत्य ॥

यह सब जग है अद्भुत पोथी । जिस में प्रभु की महिमा गूंथी
असंदिग्ध जीवत वाणी में । जो स्वभाव से है प्राणी में
सो प्रयास विन उसको जानत । तनक न उस में शंका मानत
सब हि भूत हैं उस के अक्षर । वही शब्द सह अर्थ विनश्वर
उस में भूल न होती कोई । जो समझे सो ठीक हि होई
देश काल से नहि परिणत है । एक हि रस वह सदा रहत है
जज्जा नन्ना मिल के जन हो । अर्थ जो समझे हिन्दु जन हो
पर जो व्यक्ति मनुष है खासी । उसे जानते सब जग वासी
इसी प्रकार अन्य सब जानो । प्रभु की वाणी जीवित मानो
जीती मरती मनुष की वाणी । जैसे हैं सब जगत के प्राणी
अब नहि बौधा जाति निराली । उनकी मर गई भाषा पाली
भाषा अन्य की यही वारता । उन सब को है काल मारता
जब तक सृष्टि रहेगी भाई । प्रभु वाणी तब तक नहि जाई
इस भाषा के ऋषि थे ज्ञाता । सो उनको था सब कुछ आता
उन पर भई कृपा ईश्वर की । यातें वाणी समझ उस की
पर्वत नदी वृक्ष पशु तारे । उन से बोले आदि में सारे
यही कृपा ईश्वर ने कीनी । हमें वेद की वाणी दीनी
सो जो वेद पठत हैं भाई । सो जानत हरि की प्रभुताई
तब ही लोग पूजते प्रभु को । जब जाने वह उस के बल को

ईश्वर देखत वेद का ज्ञाता। विश्व में स्थित उस का त्राता
सच्चा ज्ञान वेद से आवै। बुद्धि इ को वह शीघ्र जगावै
सो ईश्वर को मन में सिमरो। ता कि सफल हो जीवन तुमरो

येन द्यौर् उग्रा पृथिवी च दृढा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥

जो ईश्वर आकाश को रचै तेज से दीप्त।
भूमि को दृढ निवास हित स्वर्ग जहां हों तृप्त ॥
नाक मोक्ष के धाम को जहां न दुख का लेश।
सूर्य भूमि विच लोक को उन में करै प्रवेश ॥
उसको मन में स्मरण कर जो देता है जन्म।
विद्या भार्या पुत्र धन बल यश आयु सुधर्म

ईश तेज से विश्व दीप्त है। अन्ध से तु आकाश लिप्त है
इसका कारण चक्षु रंध्र है। जिस से ऊपर दिखत अंध है
यदि पुतली कुछ चौडी होती। तो भासा से आंख हि मिचती
और न कुछ भी दिनमें दिखता। जैसा उल्लू निश में उड़ता
पहिले पृथिवी धुआं धार थी। हमरे वह नहि वसन हार थी
उसको ठोस किया निवसन को। नाना वस्तु भरै पोषण को
स्वर्ग धाम मरणे के पीछे। किया हमें रहने को अच्छे
नाक कहैं जहां दुख न होता। सो हि मोक्ष का धाम कहाता
द्यो भू मध्य जो ग्रहा भ्रमत हैं। वह सब ईश्वर से शासित हैं
जो सब तारा गण मण्डल है। वह ईश्वर का राज्य विमल है

न कोइ उस से अधिक न सम है। सर्व विश्व का वह तो दम है
सब हैं उसकी प्रजा पुरानी। यही बात सब मुनिन बखानी
ईश्वर की शक्तीं अगणित हैं। क्रिया ज्ञान बल उसमें नित हैं
ऐसे समरथ अरु उपकारी। प्रभु को अर्पो आयुः सारी
शुभ करमों का सदा हि करना। ईश्वर को है आयु अर्पना
सब से मित्र भाव से बरतें। न्याय न जानें दें हम करतें

यं क्रंदसी अवसा तस्तभाने
अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति
कस्मै देवाय हविषा विधम॥ ६॥

उस ईश्वर को पूजिए मन हि भक्ति के साथ।
भू द्यौ को जो रचत है अरु हैं उन का नाथ॥
भ्रमण हेतु गति डालता उन में मन निश्चित्य।
सब उन के वासी तकैं रक्षा प्रभु से नित्य॥
जासु शक्ति करै सूर्य को उत्तेजित उत्पन्न।
भू को भोग्य पदार्थ से विद्या धन संपन्न॥

ईश्वर मन है गति का कारण। जिस से करते तारा भरमण
जब तक इच्छा प्रभु की रहती। तब तक ज्योति मण्डली भ्रमती
जब वह इच्छा को तु हटावै। तब संसार प्रलय मिटावै
इसी हेतु सब उस के वासी। रक्षा मागैं प्रभु के पासी
सुख से अधिक दुःख होने से। जगत् क्रंदसी है रोने से
इसी हेतु जन्म हि दुख माना। उस से छुटना मुक्ति हि माना
दुख पूरित जग रक्षा चाहै। ईश्वर से जिन जगत रचा है
ईश्वर किरण विश्व है सारा। दूर क्षिप्त है वार न पारा

ईश्वर की शक्ति हि है माया। जिस ने सूर्य लोक है जाया
जग ईश्वर की माया जानो। ईश्वर आत्मा न्यारा मानो
सो वह आत्मा सब के भीतर। भास रहा है देखो प्रियतर
ईश्वर को उपलब्ध करो मन। जासे सफल होय जग जीवन
श्रम कर अपनी रोटि कमाना। प्रभु की भक्ति समान बखाना
अरु जो औरों को भी पालैं। उने मान से मनुष निहालैं
अधिक ज्ञान बल आयु जन की। देनी हैगी परमात्मन की
सो जो उसको पराहित खरचैं। वह उत्तम विधि ईश्वर अरचैं

ईश्वर चरणै सीस धर निश्चय कर भक्ति से।
मुनि जन की कर रीस शुभ कर्मों अरु धर्म में॥

आपो ह यद् बृहती विश्वम् आयन्
गर्भं दधाना जनयन्तीर् अग्निम्।
ततो देवानां समवर्त्ततासुर् एकः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ७॥

सुख स्वरूप जगदीश हि मन में पूजो नित्य।
जो है सारे विश्व में विद्यमान निश्चित्य॥
विश्व में प्रजा का बीज है जहां से निकसै भान।
ईश्वर की सामर्थ्य का जो भूतों का प्राण॥

सर्ग पूर्व इच्छा करता है। ईश्वर फिर वह जग रचता है
सोई ईश चित्त होता है। गर्भ आप का जो सजता है
जितने वस्तु वृक्ष पशु दिखते। सब उत्पन्न उसी से होते
जो उस गर्भ से तेज निकलता। वही प्रजा का प्राण है बनता
वही चित्त इच्छा अरु मन है। भगवत का जो जगत जतन है

जब तक उसकी इच्छा होती। तब तक सृष्टि हैगी चलती
सर्ग स्थिति अरु लय का कारण। ईश्वर इच्छा प्रजा का पोषण
जो जग में गति जीवन भासत। सो सब ईश्वर मन से आवत
शनैः शनैः सब परिणत होते। नूतन जीर्ण मनोहर बनते
काल चक्र ईश्वर आयुध है। जीर्ण वस्तु को करत मुग्ध है
प्राण श्वांस जो भीतर होता। उस की गति का काल है बनता
उस की दृष्टि हि दिशा बनत हैं। दिशा काल प्राण सम नित हैं
पूर्ण आय है ईश्वर मन से। जो नित उस में है चिन्तन से
प्राणि मात्र का ईश्वर इच्छा। तासु आज्ञा पालन अच्छा
जगत में मान स्वर्ग में मुक्ति। जो ईश्वर दर्शन और भक्ति
ईश्वर दर्शन सुख का कारण। करत जीव के दुःख निवारण

यच् चिद् आपो महिना पर्यपश्यद्
दक्षं दधाना जनयन्तीर् यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥

ईश्वर महिमा अतुल से प्रपंच में बल डाल।
जग उत्पादक धर्म युत सदा करत पड़ताल ॥
सच्चा स्वामी जगत का सब देवों का देव।
उसको श्रद्धा भक्ति से निस दिन मन में सेव ॥

आप ईश महिमा है माया। बल शक्ति हि स्वभाव कहाया।
उसका प्रेरण बल रखना है। जिस से बनती जग रचना है
अभिप्राय इस का यह जानो। ईश्वर बल जग कारण मानो
इसे बना के राज्य करत हैं। न्याय से सब हि वह बर्तत हैं
वह राजा अरु पिता हमारा। हमें उसी का सदा सहारा

हमरे हित को सदा चाहता। कृपा प्रेम वह हम पर करता
उस की दया का पार नहि है। अन्त में हमको दुःख नहि है
जग को सदा दृष्टि में राखै। जो जस करै सो तस फल चाखै

परमेश्वर है देव सब देवों का विश्व में।
मन में उसको सेव ता कि सदा जीवन रहै॥

मा नो हिंसीद् जनिता यः पृथिव्या
योा वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश् चापश् चन्द्रा बृहती जजान
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ९॥

ईश्वर हमैं न मारता उसका निश्चय सत्य।
द्यौ भू का वह जनक है तारा चन्द्रादित्य॥
वही जनक स्वभाव का जो महान आनन्द।
उस से प्रमुदित सब जगत जीव जन्तु तरु वृन्द॥
रच के प्रथम न मेटता ज्ञानी पूरा ईश।
जीर्ण वस्तु नूतन करत जग में सर्व हमेश॥

क्या स्पष्ट यह युक्ति है दीनी। हृदय निराश सर्व हर लीनी
ईश्वर निश्चय अमिट हि भाई। यही पूर्णता ज्ञान कहाई
निश्चय कर जो वस्तु मिटावै। ज्ञानी वह नहिं कबहु कहावै
ईश्वर रचना अमिट दिखाती। मिट के वस्तु पुनः होजाती
दिन के पीछे दिन आता है। पुनः नष्ट दाना होता है
इस से सिद्ध भया है भाई। हमरी रक्षा है प्रभुताई
ईश्वर की जिसके हम प्यारे। जो नहि करता हमको न्यारे
यदि जड को तो अमर बनाया। ओ प्रिय चेतन को हि मिटाया

क्या यह बुद्धिः परमेश्वर की । जिस में साक्षी नहि मुनि वर की
वेदमें प्रयतिः परस्तात् है(ऋग्) । और स्वधा हि अवस्तात्है(१०.१३०)
प्रयतिः नाम जीव का भाई । और परस्तात् श्रेष्ठ कहाई
सो है श्रेष्ठ जीव सब जग में । स्वधा प्रयुक्ता होत भोग में
जड जगत हि है स्वधा कहाई । जिसे अवस्तात् नीच बताई
ऋग में जड का दरजा नीचा । और जीव का दरजा ऊंचा
जीव ईश के प्रियतर बालक । उन के अर्थ जगत का पालक
सो नहि ईश्वर जीव विनाशै । जिस में उसकी ज्योति विकाशै
यही ईश का सत्य धर्म है । जिसे पूजना जीव कर्म है
इसी में उसकी सदा भलाई । यही बात सब मुनि बतलाई

ध्यावो मन में ईश जिसने रचा प्रपंच को ।
उस के चरणों शीर्ष सायं प्रातः नित धरो ॥

प्रजापते न त्वद् एतान्यन्यो
विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत् कामास् ते जुहुमस् तन् नो
अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

जगत का स्वामी ईश है और न दूजा जान ।
तारा गण जो लोक हैं उस का राज महान ॥
छोडो तृष्णा तुच्छ सब जो न जीव के योग्य ।
चाहो ईश विभूतियां उस के गृह में भोग्य ॥
ईश्वर हम पछतात हैं तुझे छोड के अन्य ।
पूजा जग में भूल से हमरा तू हि शरण्य ॥
दुष्ट भाव को छांड के हम मागैं कर जोर ।
हमरे हित जो उचित है सो दे दिव्य किशोर ॥

हम ईश्वर की प्रजा कहाई। वह हमरा मालिक सुख दाई
जितने द्यौ में चमकें तारे। प्रभु के शासन में हैं सारे
वह उनका स्वामी अरु धर्ता। सदा नाश. से रक्षा कर्ता
जब हम जानैं उसकी माया। जिसे वेद ने बहु विध गाया
तब सब शोक हृदय से जावै। मन प्रफुल्ल बहु शान्ति पावै
प्रभु ध्यान से बुद्धि विमल हो। तब विद्या संपन्न शील हो
माया प्रभु की तब हि विकाशै। हृदय तिमर को तत् क्षण नाशै
फिर जग नन्दन वन हो सारा। जो दीखै सो लागै प्यारा
द्वेष हि छोड़ मीत बन जावैं। बुरे कर्म में मन न लगावैं
स्वर्ग राज पृथिवी पर आवै। दुख दरिद्र जड़ से मिट जावै
ज्ञान तब हि अति उन्नत होई। हृदय मूर्खता जावै धोई
पाप नशै सुधर्म रुचि बाढै। गुप्त शक्ति मन की सब काढै
जब देवों सम पावन जन हो। तब हि जोग वह जग शासन हो
उस के कोश का अन्त न आवै। जो चाहै सो वह सब पावै
श्रेष्ठ मनुष्य ईश को प्यारा। उस का मित्र होय जग सारा
धर्म अभ्यास सज जन संगति। करत मनुष को जोग परम गति

हो यह विनय क़बूल ईश्वर के दरबार में।
क्षमौ हमारी भूल कर किरपा हे दया मय॥

॥ उपदेश ॥

ओं नमो ब्रह्मणे ऽमित तेजसे !

देवो देवानाम् असि मित्रो ऽद्भुतो
वसु वसूनाम् असि चारुर् अध्वरे।
शर्मन् स्याम तव सप्रतस्थे ऽग्ने
सख्ये मा रिषाम वयं तव॥

सब देवन के देव हो अद्भुत त्राता आप।
उत्तम धन सुन्दर यजन विनसौ हमरे ताप॥
ज्योति सुख दायक प्रभो रहैं भक्त तव नित्य।
विमुख आप से कहांचित् नहि होवैं हे सत्य॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य वयं स्वदेशे सुखिनो भवेम।
इमां न इच्छां कुरु सुष्ठु पूर्णां तवानुकंपाकरणात् प्रसिद्धात्॥

सब सृष्टि के पिता हो सुनियो विनय हमार।
रहैं सुखी निज देश में यह मागैं करतार॥

सुनो दशा निज भ्रावो चितला। भूल गए थे सब कुछ पिछला
ईश छोड़ मडियां पूजत थे। वेद छोड़ गप्पैं पढते थे
यातें कष्ट सहे वहुतेरे। भटकत फिरे पाप के प्रेरे
पुनः कृपा परमेश्वर कीनी। दयानन्द को प्रज्ञा दीनी
शिव रात्रि को ध्यान में तत्पर। देखा नहि है मूर्ति महेश्वर
प्रकट कीन यह वेद से सब पर। देश नगर ग्रामों में फिर कर
तव से वेद मानने लागे। वहुत दुःख हम से हैं भागे
वेद कहत दूर दुख तव हो। भ्रातृ भाव स्थापित जब हो
सुनो वेद की बात जो चाहो अपनो भलो।
प्रभु सिमरो दिन रात सब मिलकर भोगो मही॥

* सार्वभौमिक भ्रातृभाव *

॥ प्रार्थना ॥

सं समिद् युवसे वृषन् अग्ने विश्वान्यर्य आ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥ १॥

हे जग निरंजन हार हर विद्या ज्योती रूप।
अगणित सुख नित देत हो हमरे सच्चे भूप॥

सकल विश्व में पूज्य हो भिन्न जातियों मांह ।
सब से प्रिय हो जीव को धन दे हमें यथांह ॥

परमेश्वर हि परमाणु जोडै । सृष्टि बनावै सुख जल छोडै
ज्योति स्वरूप पिता हमारा । अर्थ सूनु को आर्य पुकारा
प्रभु है अर्य उ हम हैं आर्या । पिता पुत्र संबंध समया
हमको प्रभु जीवन से प्यारा । उस का है सब माल हमारा
पुनः पुनः उस से हि माँगे । भोजन विद्या सुख जो लागैं
जीव लोक उसको है प्यारा । सुखागार रच्या जग सारा
सो हम मागैं धन सुखदाई । जासें हमरी विपद नसाई
दीजो प्रभु जो तुम को भावै । यातें जीव मात्र सुख पावै

* ईश्वर का उत्तर-शिक्षा *

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥२॥

व्यवहारों में न्याय से मिलकर करो विचार ।
ज्ञानी पुरुषों के सदृश भाग करो स्वीकार ॥
जब सब मिल सब के लिए पोषण का लैं काम ।
रहै न तब चोरी कपट दुख दरिद्र का नाम ॥

ईश्वर कहै मिलो तुम सम्यक । व्यवहारों में जो सुख दायक
करो कर्म सब के हितकारी । पर हानि हि को देउ बिसारी
जैसे एक कुटुंब के भाई । मिलकर रहैं अरु करैं भलाई
सबहि अर्थ अर्जन धन करते । सुख दुख में सब मिलके रहते
काल विपत में छोड न जावैं । मान महत वे जग में पावैं
ऐसे सब जो नगर बसावैं । सौ सौ घर का टोल बनावैं
गृह पतियों की सभा रचावैं । वृद्ध बालकों को सिख लावैं
युवा पुरुष खेती को करवैं । अन्य कार्य में भी वह मिलवैं

नारी जन गृह कार्य समालैं। मास मास सब कुछ पड़तालैं
मिलके पूजैं मिलके सोचैं। मिल के उपलब्धि हि को खरचैं
आय व्यय के सब मिल स्वामी। न्याय से वरतैं अरु हो प्रेमी
इस विधि चोरी जारी जावै। झूठ कपट दारिद्र नसावै

समानो मंत्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तम् एषाम्।
समानं मंत्रम् अभि मंत्र ये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

करो विचार समान सब नियम धर्म अनुकूल।
चिन्तन इच्छा न्याययुत शुभ मंत्र निर्मूल ॥
सब की मति हो एकसी सब के हित के अर्थ।
जिससे सब जन मित्र बन हों शुभ करन समर्थ ॥
सब को है सम देखता ईश्वर गुण संपन्न।
उनको सुख में देख कर होता बहु प्रसन्न ॥

ग्राम सभा में बैठ विचारो। ग्राम कार्य सब ठीक सभारो
कोऊ किसी से द्वेष न राखै। शुभ गुण सब से सदा हि सीखै
कठिन विषय में भिन्न मतिन को। एकी करलो सार गृहण को
सत्य धर्म सब में प्रचरित हो। ना कुमार्ग में कोइ पतित हो
सब के प्रति शुभ इच्छा राखो। उनको मित्र भाव से देखो
सब के शुभ कर्मों को सिमरो। दुर गुण पर दृष्टिः नहि डारो
शुभ गुण कर्म को सदा बढावो। मन में विद्या ज्योति जगावो
परमेश्वर की किरपा सब पर। सो हो ज्ञान वृद्धि में तत्पर

मिल जावो सब लोग ग्राम ग्राम अरु नगर के।
ईश दया का भोग करो परस्पर मित्र बन ॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानम् अस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति ॥४॥

अपनी अपनी शक्ति तुल सदा करो उत्साह ।
सब के हृदय प्रेम हो ईश्वर भक्ति अथाह ॥
मन वाचा अरु कर्म से न्याय धर्म नहि त्याग ।
सब मिल जीवो ता कि हो रक्षित तुमरा भाग ॥

यथा शक्ति जब काम करैं जन । करैं न आलस तन्द्रा में मन
तब सब को सुख निश्चय होवै । संग दोष से कोउ न रोवै
अब दुख है वह फैल फूट का । जिस में सबको स्वार्थ लूट का
पर हानि ह से खुश होते हैं । लालच अर्थ पाप करते हैं
अपनी अपनी सबै पड़ी है । नित नइ आपद आय खड़ी है
कबहू लूटे मारे जाते । कबहू बेटी वधू गमाते
सत्य धर्म पुष्कल धन होते । आये दिन हुरमत ही खोते
फैल फूट कर निर्बल होगए । सभ्यों की दृष्टि से गिरगए
इज़्ज़त रखो ऐंड को छोड़ो । लोक लाज से मुख नहि मोड़ो
मान गया तो ज्ञान कथा है । बिना मान जीवन हि वृथा है
मान रहेतें ज्ञान सजत है । सुख संपत संतान बढत है
बलवत तुम को मेल करैगा । जग में तुमरा मान बढैगा
करो हृदय में ईश्वर अर्चन । उस के अर्थ करो धन अर्पन
यातें ज्ञान बढै निस वासर । ज्ञान से धन वृद्धि हि बराबर
मिथ्या कथा कँहानी पढकर । निर्बल मूर्ख हुएँ हैं सब नर
अब तो मन में तनक विचारो । बीत गई को मित्र बिसारो

आगे को मिल जाव करो न धन का लोभ इह ।
ईश्वर मन में ध्याव जो हमरी रक्षा करे ॥



॥ तात्पर्य ॥

इन का भाव अर्थ सुन लीजै। उरः की पाटी पर लिख लीजै
ईश्वर को सब पूजत जग में। अपनी बुद्धि बताए मत में
हम सब उस के पूत श्रेष्ठ हैं। मागत उस से सुख अभीष्ट हैं
मानो ईश्वर हम से कहत। रहो संग उ सत्य पै चलते
जैसे पूर्व के विद्वज् जन थे। सो स्वभाग में प्रसन्न मन थे
सब काज का विचार सत हो। स्वत्त सबों का रक्षित नित हो
देखो कोई दुखी न होवै। भूखा प्यासा जावै सोवै
अभिप्राय ... प्रेम प्रचुर हों। सब सब की उन्नति तत्पर हों

मिल ... सब लोग गांव गांव के देश में।
मिलकर करियो भोग यथा शक्ति कर कृत्यको॥

मातृ भाव कैसा उत्तम है। सब धार्मिक जनको प्रियतम है
बिन उस के व्यवहार हमारा। सुख संपत पशु जीवन सारा
रक्षित नहि पृथिवी पर सारी। सब को विपदः रहवैं भारी
यत्न राज के जन कर हारे। दुःख देश से टरत न टारे
निष्फल सकल सभ्यता वीतीं। जिनने नइ नइ घडी कुरीतीं
सुख की जगह दुःख फैलाया। लोगों को निर्बुद्ध बनाया
कायरता नचना अरु गाना। हांसी ठठ्ठा उत्तम जाना
यातें नष्ट सभ्यता होगई। स्वार्थ के बीज यहां बो गई

भाई यह तु असत्य नहि मातृ भाव बिन काम।
हमरे रहत अपूर्ण हैं यातें डूबनो नाम॥
यातें डूबो नाम जगत के सभ्य जनों में।
जिन के पीछे रहे बढ वह सकल गुणों में॥
अभी न छांडैं ऐंठ फूट से वित्त गवाई।
करो उठन को ऐक्य इन्द्र पूजन में भाई॥

पुजो इक ईशान जो अपना आत्मिक पिता।
अन्य नाहि भगवान करत वेद शिक्षा हमें॥

ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १००

॥ ईश्वर रक्षा ॥

* ओम् *

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका
महो दिवः पृथिव्याश् च संराट् ।
सतीन-सत्वा हव्यो भरेषु
मरुत्वान् नो भवतु–इन्द्र ऊती ॥ १ ॥

जीव जात अरु मुक्त हैं वही मरुत विख्यात ।
सो नियरे प्रभु के रहैं जो उनका पितु मात ॥
पंच भूत जल आदि का जविन के सुख हेतु ।
विस्तारित बहु विधि किए और सदा सुधि लेतु ॥
भू द्यु का महाराज है इन्द्र पूज्य–तम देव ।
सो हमरी रक्षा करै वा को पद सब सेव ॥

प्रभु है उत्तम सुख का दाता । हम सब का वह नित है पाता
उस ने हि हम को है बनाया । पंच भूत जो उस की माया
जीवों से कुछ जग में आवैं । पुनः इहां से मुक्ति हि पावैं
सब हि मरुद् गण हैं कहलाते । प्रभु समीप रह काम चलाते
जो भगवत इच्छा सो करते । आज्ञा कर प्रसन्न विहरते
पृथिवी और लोक जो भ्रमते । गगन बीच अरु रात को दिखते
सब का एक मात्र स्वामी है । वही पूज्य अन्तर यामी है
जगत रचन उस की है माया । जिस का पार न कोई पाया
बढे बढे योधा इस जग में । रक्षा उस से याचैं मन में
हम अबलों की क्या हि कहानी । जासु अवस्था नीच बखानी
आजावो प्रभु के तुम शरणी । आगे तजो पाप की करणी
क्षमा शील इन्द्र क्षिति पाता । कर हैं स्वीकार अघ त्राता

उसे छोड़ अन्य नहिं ध्यावों। यातें इह अमुत्र सुख पावो
जो जो प्रभु की शरणी आवैं। उन के निकट दुःख नहिं जावैं

यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो
भरे भरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥

सूर्य सदृश उसकी गतिः नहि है जाको पार।
जो देखै सो भिन्न विध वरणत मति अनुहार॥
सब जग के उत्पात में शत्रु मार अरु दग्ध।
करत दया मय इन्द्र नित नहि जानत यह मुग्ध॥
अपने अनुचर जीव सह करत राज सुख पूर्ण।
सो हमरी रक्षा करैं महा बली अति घूर्ण॥

प्रभु के कार्य का अन्त न जानै। जो ज्ञानी सो विविध बखानै
जैसे सूर्य जो नित प्रति दीखै। कोई ज्ञान उस का नहि सीखै
विरले ईश मार्ग पहिचानैं। वह हि ठीक ईश को मानैं
जब उत्पात जगत में होवैं। और प्रजा सब सुख को खोवैं
असुर सिंहार निशाचर मारे। संकट से सब प्रजा को तारे
मारुत गण जो प्रभु के लशकर। संग नित्य ज्यों रश्मि प्रभाकर
सुन्दरता प्रताप के दर्शक। सन्त जनों के सुख के वर्द्धक
नूतन वस्तु हमें वह देता। पूर्ति संवत्सर रुज हर लेता
यदि हम इन के सद् गुण जानैं। तो दुख जग में तनक न पावै
हमरे दुख कुभोग से उपजत। इन्द्रिय दमन उन्हे है नाशत

दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः
पन्थासो यन्ति शवसा परीताः।
तरद्-द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्
मरुत्वान् नो भवत्विंद्र ऊती ॥ ३ ॥

जैसे सूरज किरण तें जल वर्षें प्रति वर्ष।
वैसे ईश मयूख नित लावें जीवन हर्ष ॥
आत्म जोत बलवान है कहीं न उसकी रोक।
जीव जासु से जगत में आवैं जांइ अशोक ॥
पापी जनको ठीक कर शत्रुन को संहार।
सर्व शक्ति से इन्द्र हर रक्षा करैं हमार ॥

जो कुछ भव सागर में होता। वह ईश्वर की गति बतलाता
भौतिक सब इन्द्रिय गोचर है। जो आत्मिक सो ज्ञानान्तर है
भौतिक से बुद्धि हि अनुमानै। अरु ईश्वर की इच्छा जानै
जो चाहैं सत बोध हि पावैं। वो रचना में ध्यान लगावैं
इस में नित परिवर्त्तन होते। ज्ञान बीज द्रष्टा में बोते
अब देखो वर्षा सिखलाती। ईश प्रभा जीव झां लाती
वर्षा तो ऋतु भर रहती है। आत्मिक वृष्टि सदा होती है
यातें जन्म मरण नित होता। पर आंखों से वह नहि दिखता
जीवों का आना अरु जाना। अनतुरोध अरु अति बलवाना
ईश्वर इच्छा उस का कारण। वही हमारा भव का तारण
ईश्वर दुष्टों को संहारै। अपने बल से शत्रुन मारै
ऐसा भगवत पिता हमारा। कर है रक्षा वारं वारा
वह है सच्चा सब का स्वामी। पोषक नायक अन्तर यामी
नित हिरदय में उसको पूजो। और न कोऊ मानो दूजो

जिन ने उस का शरण है लीना । उन ने सफल किया है जीना
वो हि स्वर्ग में वास करैंगे । पापी जन सब जियैं मरैंगे

सो अंगिरोभिर् अंगिरस्तमो भूद्
वृषा वृषभिः सखिभिः सखासन् ।
ऋग्मिभिर् ऋग्मी गातुभिर् ज्येष्ठा
मरुत्वान् नो भवत्विंद्र ऊती ॥४॥

सर्व शक्ति युत इन्द्र हरि सब से हैं बलवान ।
कोइ न आगे जा सकै करने में कल्यान ॥
उन से हमरा सर्वदा और न बढकर दान ।
हमको कोई देत है यह निश्चय तु जान ॥
उस सम कोउ साथी नहि ना हि हितैषी अन्य ।
पूजनीय उत्तम प्रभु सुमति जिन से जन्य ॥
वन्दनीय वह देव हैं सब देवों में ज्येष्ठ ।
वह हि केवल जानते हमरे हित जो श्रेष्ठ ॥
करैं विनय जगदीश से रक्षा करो हमार ।
हम अधर्म में गिर पड़े थांवौ हे करतार ॥

जब हम अपने मन में सोचैं । तब इस निश्चय पर हम पहुचैं
वास्तव में ईश्वर रक्षक है । कर्त्ता धर्त्ता नित पोषक है
जासु मिहर हमको प्रिय करवै । धन विद्या दे अवगुण हरवै
धर्म कामना का तरु वर है । दया का शान्ति युत सरवर है
सर्व शीघ्रतम गति उस की है । जीव किरण उस के यश की है
वेगवान जिस से नहि जग में । इसी हेतु रक्षित डग डग में
देखो कैसा देने वाला । हमें किये विन मांग निहाल।
यही बात इक कविः कही है । सो सुनलो अय मित्र सही है

जब दान्त न थे तब दूध दियो अब दान्त दिये क्या अन्न न दै है।
जो जल में थल में पशु पक्षी की सुध लेत सो तेरी भी लै है॥
काहे को शोक करै मन मूरख शोच करै कछु हाथ न ऐ है।
जानको देत अजान को देत जहान को देत सो तो का भी दै है॥

सखा वही जो साथ रहत है। अरु सुख हित सब कार्य करत है
ऐसा और न जग में दीखै। यह शिक्षा नर वेद से सीखै
पूजनीय केवल भगवत है। उस के आगे शिर नावत है
बुद्धिमान इस जग में जो है। मूरख ने तो जड़ पूजो है
जितने माननीय विज्ञानी। उन में स्तुति योग्य प्रभु दानी
करो इवादत उसकी निस दिन। बुद्धी मता नहि है इस बिन
इस के आगे धन है सम तृण। यही कहावत देना ऋषि ऋण
हे भगवन् स्वरूप अब भासै। मन में दृढ हो पाप विनासै
हम निर्बल रक्षा प्रभु कीजै। शोक ताप हमरे हर लीजै
तुझ बिन और न हमरा पाता। तब सेवक हैं हे जग माता

स सूनुभिर् न रुद्रेभिर् ऋभ्वा
नृषाह्ये सासह्वान् अमित्रान्।
स नीडेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्
मरुत्वान् नो भवत्विंद्र ऊती॥ ५॥

मरुत रहत सब पुत्रवत परमेश्वर के पास।
उने रुद्र भी कहत हैं है सनीड सह वास॥
ये ईश्वर के रश्मि हैं करैं निरन्तर काज।
जल वर्षा कर अन्न से पोषत सकल समाज॥
अन्य आज्ञा ईश की पूरी बल अनुसार।
अमर लोक में करत हैं जित रहवै करतार॥

इन्द्र देव संग्राम में दुष्ट जनों को मार।
असहनीय सामर्थ्य से शासत सब संसार॥
हे मघवन रक्षा करौ हमरी जग के मांह।
धर्म मार्ग में ले चलो गह शरणागत बांह॥

इन्द्र की ज्योति मरुत बने हैं। इन्द्र देव के सदा कने हैं
अन्न पान पृथिवी पर लावैं। जीव मात्र को सुख पहुचावैं
इन्द्र देव हैं मरीचि माली। जीव मरीचि धर्म शुचि वाली
भगवत इच्छा से श्रां आवैं। ठीक कार्य कर मुक्ति ह पावैं
ये ही मारुत गण कह लावैं। ईश्वर की महिमा फै लावैं
मुक्त जीव सो मरुत कहावैं। ईश राज में सुख पहुंचावैं
ईश्वर की आज्ञा से आते। जन सहाय कर वापिस जाते
जीव सदृश वह नहि दिखते हैं। पर याचक का हित करते हैं
ऐसे चार भांति के गण हैं। शूद्र वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण हैं
पंचम पोषण जग का करते। षष्ठम लोकान्तर में फिरते
सप्तम पशु आदिह को जानो। जिन के लिए न कर्म वखानो
ये सब जीव मरुत बनते हैं। जद वे मुक्ति ह पद पाते हैं
सदा इन्द्र की पूजा करते। विद्या से परि पूरण रहते
यह सब भृत्य इन्द्र के हैंगे। जो पद मुक्त जीव पावैंगे
सो परमेश्वर भजो निरन्तर। यातें सुख हो वहु कल्पान्तर

स मन्युमीः स मदनस्य कर्त्ता
अस्माकेभिर् नृभिः सूर्यं सनत्।
अस्मिन् अहन् सत्पतिः पुरुहूतो
मरुत्वान् नो भवतु-इंद्र ऊती॥ ६॥

जग कर्त्ता प्रभु इन्द्र हैं मन्यु विनाशक जान ।
मदन काम के सृजक हैं दियो सूर्य है दान ॥
वे हि सच्चे स्वामी हैं पूजत जिनै जहान ।
सो हमरी रक्षा करैं यहां इन्द्र बलवान ॥

काम कोप बल हैं अति भारी । इनका सेवन बुधि अनुहारी
जो करवैं सो दुख नहि पावैं । प्रत्युत उन से लाभ उठावैं
पर जो अनुचित उनको सेवैं । सो अपना सब कुछ खो देवैं
मदन हि काम क्रोध मन्यु है । धर्म्य प्रयोग सौख्य जन्यु है
मदन निरोध बढावै प्रज्ञा । सुगम वेद हो ईश्वर आज्ञा
वपु बढै अरु रोग नसावै । बलवत सन्तान हि उप जावै
जो तु काम के वश होजावैं । पाप कर्म में तन हि गवावैं
निर्बल अल्प आयु होजावैं । सन्तान हि निर्बल उप जावैं
ये हि वेद के द्वेषी होवैं । पाप जनित क्लेश से रोवैं
क्रोध पाप पर उचित है भाई । क्रोध पाप को देत भगाई
पर आपस में क्रोध न करिये । प्रत्युत सब से प्रेम बरतिये
क्रोध काम का प्रभु कर्त्ता है । सुप्रयोग से सुख होता है
यह हि वेद आशय है भाई । सो तुम मन में लेव जमाई
देखो प्रभु ने सूर्य बनाया । हमको कैसा सुख पहुचाया
अन्न पान सब उस से आवैं । उस से ऋतु परिवर्त्तन पावैं
जीवन जग में सुख से बीते । अन्य बहुत हैं हमें सुबीते
जिसने हम को सुख अस दीना । सच्चा स्वामी हमने चीना
उसे छोड जो भट कत फिरते । सुख खोते अरु दुख में गिरते
सुख की निधि केवल ईश्वर हैं । विद्या धर्म अनामय कर हैं
आज हमारी रक्षा कर हैं । रोग शोक संकट सब हर हैं

तम् ऊतयो रणयञ् छूरसातौ
तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥

धन्यवाद करते मरुत इन्द्र प्रभु का नित्य ।
सूर्य दान के विषय में जो महान है कृत्य ॥
सब मनुजों की कुशल को वही इन्द्र भगवान ।
सदा रखावैं जगत में कर अति कृपा महान ॥
विश्व का राजा वही है वही देत है मोक्ष ।
जिस से धर्मी जीव को सुख हो महत परोक्ष ॥
हे प्रभु इन्द्र महा बलिन रक्षा करो हमार ।
आप विना हमरो यहां नाहि वचावन हार ॥

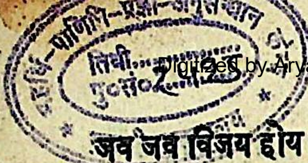
सूर्य जगत का जीवन जानो । उस विन अन्य न कोइ ठिकानो
उस के घर्म से जल उड़ता है । जहां जहां वह इह होता है
जव हि वाष्प ऊपर जाती है । शीतल हो पुन जल वनती है
गरुता से पृथिवी पर आवै । खेत सींच अन्न हि उपजावै
अन्न में रश्मि जीव ह लातीं । अग्नि जल से प्रजा वढातीं
जहां न धूप उपज नहि होती । वनस्पति सव शिशिर में सोती
सूर्य तपन से वायु हि चलती । जीव जन्तु को गरमी मिलती
रंग रूप सूर्य हि से दिखवैं । जग व्यवहार उस से होवैं
उसी से विजुली चंबुक शक्ति । प्राण अपान और शोणित गति
होती जग में जो गुण कारी । उसी से अन्य लाभ हों भारी
कोइ कहां तक वर्णन करवै । बुद्धि थकित हो पीछे फिरवै
ईश्वर के उपकार की गणना । संभव नहि है मनुज को करना

यातें जव ईश्वर ढिग जावैं। धन्यवाद कर गुण नित गावैं
परमेश्वर है सच्चा राजा। हम सव हैं उस की ही परजा
सो नित उस की रक्षा चाहैं। सव सुख उसकी शरणी मां हैं
उसे हि पूजो मन के भीतर। उस पर आशा रखो निरन्तर

तम् अप्सन्त शवस उत्सवेषु
नरो नरम् अवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित् तमसि ज्योतिर् विदन्
मरुत्वान् नो भवत्विंद्र ऊती ॥८॥

इन्द्र प्रभु ढिग जात हैं नर जय हर्ष के मांह।
हृदय वीच इस जगत में दाता उस सम नांह॥
रक्षा अरु धन याचना करत उसी के पास।
वह हि निकट है जीव के और जीव की भास॥
जव छावै तम जीव पर किसी विपद के वीच।
वह अनुकंपा से करत ज्योतिः दया समीच* ॥ सागर*
सो वह है मुशकिल कुशा धन दाता जग पाल।
कर है रक्षा सर्वदा हम को माला माल॥

जव मनुष्य को जय इह मिलती। अथवा सिद्धि कार्यं में होती
तव उमंग में वह है आता। धन्य वाद है प्रभु को देता
ऐसा सदा हि देखा जाता। जैसा है इति हास वताता
महिषी एलीज़िविथ जव जीती। आरमेडा स्पेन की किशती
जो आई थीं देश ह लैने। नष्ट कीन दैशिक माझी ने
तव उन धन्य वाद हरि दीना। आ शी र्वा द प्रभु से लीना
ऐसे हि जव कोलंवस आया। एमेरिका का खोज लगाया
महिषी एसाविल ने दीना। धन्य वाद हरि को हो दीना



जब जब विजय होय बुधि जनको । तब तब वह यश मानत हरि को
जब दुषमन को जीतै कोई । उसे खुशी महती तब होई
खुशी में ईश्वर को ध्यावै है । अरु ज्योति उत्तम पावै है
ऐसे हि जन जब विपद में गिरते । तब शंभु स्तुति मन में करते
यातें कंटक देख के बचते । ईश्वर बल से साफ निकलते
अन्ध जगत में ईश्वर दीपक । ई श्व र रक्षक सर्व व्यापक
भजो नित्य ईश्वर को भाई । सिखलावो उस की प्रभुताई
प्रात काल नित रक्षा मांगो । पाप कर्म को दिल से त्यागो

स सव्येन यमति व्राधश्चित्
स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
स कीरिणा चित् सनिता धनानि
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥

वांय हाथ से रोकता हिंसक को करतार ।
इन्द्र प्रभु अरु दांय से हविः करै स्वीकार ॥
जब हि धर्म की प्रार्थना करै कोइ उस पास ।
तब वह बहु धन देत है करै न उसे निरास ॥
सर्व शक्तिमन इन्द्र हरि रक्षा करो हमार ।
हमरे को दुस्तर तरण भव सागर के पार ॥

कैसी प्रभु हैं दया दिखाते । शत्रुह को हैं दूर हटाते
अभय दान सर्वदा करते । हिंसक हन संकट सब हरते
धर्म्य कर्म को स्वीकृत करते । शीर्ष पर रक्षा हस्त हैं धरते
ऐसी दया कहां हम पाते । अपने पापों पर पछताते
यद्यपि हम दुष्कर्म हि करते । तद्यपि हम पर कृपा हि करते
इस को हि कहैं स्नेह पिता का । और हितैषी जग माता का

देखो हम कुपूत हैं कैसे । कहां पिता हैं भगवत जैसे
अति दयालु अरु पोषक रक्षक । हमें न मारसकै कोई हिंसक
जब आतुर हों विनती करते दिव्य पिता पुकार हैं सुनते
चिन्ता मेट धनह देते हैं । विविध भांति के सुख देते हैं
जिन ईश्वर की आज्ञा पाली । जो ऋषि मुनि की सत्य प्रणाली
उन ने मन में सिद्धि ह पाई । अन्य को चाल की लीक बनाई
उस पर चल अघ भय नहि होई । वही सत्य पथ और न कोई
यही बात मनु जी कहते हैं । जो मानत वह बुधि रखते हैं

येन यस्य पितरो याता येन याताः पिता महाः ।
तेन याय तु सतां मार्गं तेन गच्छन् न ऋष्यति ॥

चलो श्रेष्ठ पुरुषों के पथ पर । उस पर चलकर दुख नहि कणभर
उस से उत्तम तर नहि पथ है । गुण प्रसंशा जासु अकथ है

स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्
विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर् न्वद्य ।
स पौंस्येभिर् अभिभूर् अशस्तीर्
मरुत्वान् नो भवत्विंद्र ऊती ॥ १० ॥

चिन्तन शील मनुष्य को रथ मनुष्य अरु ग्राम ।
दर्शावैं जगदीश को जो है सब का धाम ॥
इन सब का दाता वही अरु रक्षक बलवान ।
अपने बल से दुष्ट को मारत है भगवान ॥
उसकी शक्ति असीम है जो पालत संसार ।
अब रक्षा करिये प्रभो विद्या के भंडार ॥

इन्द्र सर्व संपद के दाता । जो कुछ जग में दिखने आता

उस की कृपा बिना नहि पावैं । कोइ वस्तु जन जित कित आवैं
उसी के गांव उसी के रथ हैं । उसी के सारे जग के पथ हैं
सर्व मनुष्य इन्द्र की महिमा । दिख लावैं कर धर्म के कर्मा
ईश ज्ञान न पशु में होई । मनुज देह पूत किया सोई
यातें मनुज जीव में भाई । प्रभु की महिमा देत दिखाई
गांव की शोभा मनुज बनाई । उसी ने रथ अरु रेल चलाई
जो जो वैभव नगर में पाते । बुद्धि हि से सब मनुज बनाते
प्रभु की कैसी अद्भुत रचना । मनुष सृष्टि में प्रजा सवचना
यातें मनुज है ईश्वर झंडा । मनुज जीव गह जिस का डंडा
हम सब जग में ईश ध्वजा हैं । यातें सब जग में राजा हैं
जो इस ध्वजा के नीचे आवैं । सो अनन्त सुख निश्चित पावैं
उन के वैरिन को प्रभु मारैं । उन पर रक्षा हाथ पसारैं
भय अरु शोक तनक नहि राखै । जीव सदा अमृत को चाखै
सो प्रभु हमरी रक्षा कर हैं । शोक ताप सब पल में हर हैं
प्रभु से नहि हम विमुख रहैंगे । उस की पूजा सदा करैंगे

स जामिभिर् यत् समजाति मीढ्वे
जामिभिर् वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥

इन्द्र से सब जन मांगते कुछ सहाय हित अर्थ ।
तब संग आवै मरुत के जो हैं द्विविध समर्थ ॥
जो जनमैं वह जामि हैं नहि जनमैं सो अजामि ।
अँग जाने से एव हैं अग्नि बन्धु हैं जामि ॥
यह सब शक्ति है प्रभु की वह नित हैं उस पास ।
इन ही से इस जगत में होता प्रभु का भास ॥

सो प्रभु सर्व सामर्थ्य से श्रेष्ठ की करैं सहाय ।
उस की सन्तति जगत में फूलै फलै अघाय ॥
इस की रक्षा सदा से करता है प्रभु आप ।
सोई इन्द्र परमात्मा दूर हैं हमरे ताप ॥

मीढ्वे नाम है धन अरु सुख का । प्रापण आसु मनोरथ सब का
यह ईश्वर की कृपा का फल है । जिस का पाना धर्म का बल है
ईश्वर सन्तन की सुनता है । धर्म्य कार्य में अनुमन्ता है
सज्जन का सुख उसका हित है । प्रभु आज्ञा सज्जन पालत है
सो जब सज्जन उसे बुलावें । सर्व मरुत गण सह वह आवै
संकट हर धन अरु सुख देवै । पुत्र पौत्र की विजय करावै
अपने सब बल से वह आवै । अरु दुष्टों को मार भगावै
उस का बल मारुत गण बाजे । जिस के संग वह सदा विराजे
सो वह दो प्रकार का बल है । जामि अजामि हि मारुत दल है
मुक्त जीव जामिः होते हैं । ईश्वर रश्मिः हो रहते हैं
इन से भिन्न और किरणें हैं । जिनको नित्य कार्य करने हैं
सो अजामि हैं जन्म न जिनका । उन बिन हिलता कोइ न तिनका
वह बल सदा प्रभु संग रहता । प्रभु भक्तन को बहु सुख करता
उनकी संतान स्थित करता । जग में उन के नाम को रखता
हाल हमारा यही हुआ है । जब सब जगत में अन्य मुआ है
सो हम धन्य वाद दें भव को । जिन राखा अब तक हम सबको

स वज्रभृत् दस्युहा भीम उग्रः
सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पांचजन्यो
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १२ ॥

परमेश्वर है वज्र धर दस्यु हनन अरु भीम।
तेजस्वी सर्वज्ञ अरु बल है जासु असीम॥
वह स्तुति के योग्य प्रभु देवों बीच महान।
पंचभूत के जनक हैं सोम महा बलवान॥
सब की हि रुचि बढावते अति दयालु जगपाल।
सो हमरी रक्षा करैं हम पर होय निहाल॥

ईश्वर की शक्ति है अति भारी। जिसने सृष्टि रची है सारी
वज्र नाम शक्ति हि का जानो। दस्यु को हानि कर्त्ता मानो
शक्तिमान मारै चोरों को। भीम भयानक दिखै उनों को
उग्र तेज सहस्र अरु शत को। ज्ञान अनन्त कहैं चेतस को
सो अनन्त ज्ञान है प्रभु में। तेज विराजत है शंभू में
उन हि महादेव ह को पूजो। और न भजो देवता दूजो
उस से हि उत्पन्न जग होवै। पंच भूत से निर्मित होवै
सब का रक्षक केवल वह है। अवश बांह धर्मी की गह है

तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत् स्वर्षा
दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान्।
तं सचन्ते सनयस् तं धनानि
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती॥ १२॥

परमात्मा अरु इन्द्र में कोउ न अन्तर जान।
दोउ शब्द का वाच्य है जो है जग की जान॥
उस की शक्ति प्रघट है सर्व वस्तु से भिन्न।
मानो सब हैं मानतीं उच्चैः स्वर से भन्न॥
दुष्टों का सततं दमन मिलत भलों को दान।
धर्म मार्ग में सूर्य सम चमकै उस का मान॥

उस के तेज अरु दान का जग में मचा है शोर ।
उसकी हि शक्ति कर रही जग में कारज घोर ॥
कोइ समय नहि शिथल है सृजन नशन का कर्म ।
अग्नि वारि विद्युत हवा गति चंवुक का धर्म ॥
प्रभु के यह सब भृत्य हैं कर्म करें दिन रात ।
सर्ग स्थिति लय सृष्टि में विद्या से विख्यात ॥
सब सेवा प्रभु राज में सब धन हैं वे अन्त ।
सो निर्भय सब विचरते जीव जन्तु निश्चिन्त ॥

धर्म शास्त्र में मनु जी कहते । सच्चा अर्थ सो क्यों न गहते
वहां कहा वह यह है भाई । सो सुनलो तुम चित्त लगाइ

प्रशासितारं सर्वेषाम् अणोर् इयांसम् अणुर् अपि ।
रुक्माभं स्वप्न–धी–गम्यं विद्यात् तं पुरुषं परम् ॥
एतम् एके वदन्ति–अग्निं मनुम् अन्ये प्रजापातिम् ।
इन्द्रम् एके ऽपरे प्राणम् अपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

जो सब का स्वामी है भाई । वह नहि देता हमें दिखाई
ज्ञान रूप अध्यात्म दिवा–कर । पार्थिव इन्द्रिय का नहि गोचर
स्वप्न सदृश बुद्धि ह जब होवै । तेजो मय देखा तब जावै
सोई आदि पुरुष अविनाशी । सदा जीव के बुद्धि विकाशी
इन को कोइ अग्नि मनु कहते । प्राण इन्द्र नाम कोइ धरते
नित्य ब्रह्म इन हि सब गावैं । तथा प्रजा पति नाम बतावैं
सर्व शक्ति मत इन्द्रः प्रभु है । सर्व शक्ति सर्वत्र हि विभु है
नियम विरुद्ध चाल जब पावै । उसे ठीक कर पथ पर लावै
दुष्ट नियम घातक सब जानो । क्लेश कर्म के रूप हि मानो
तिने दमन सदैव वह करता । और जगत को सुख से भरता
जो उस की आज्ञा पर चलते । वह हि रहते फूलते फलते

जग विख्यात है प्रभु की देनी। पालन में नहि देखै करनी
सब को विन याचन देता है। यथा योग्य किरपा करता है
कर्मों का फल सबको देता। न्याय यथावत सब का होता
सब सृष्टि इ में काम लगा है। मनुजों से तम दूर भगा है
विद्या सब में फैल रही है। सभ्य मनुष को बना रही है
धन दौलत सब की उन्नत है। जो देखो सो सुखी प्रमत है

यस्याजस्रं शवसा मानम् उकथं
परिभुजत् रोदसी विश्वतः सीम्।
स पारिषत् क्रतुभिर् मन्दसानो
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४ ॥

प्रभु के बल का अन्त नहि सर्व ठौर विख्यात।
सब के वल का मान है धर्म शत्रु बल घात ॥
भू द्यौ की रक्षा करत नित्य और सर्वत्र।
याते भय नहि किसी को प्रभु के गृह में यत्र ॥
जब हम आज्ञा पालते जाइ यतावत वेद।
खुश हो प्रभु तारत हमें भव सागर विन खेद ॥
ऐसे दीन दयालु हरि इन्द्र जगत के नाथ।
हमरी रक्षा नित करें हमें रखें नित साथ ॥

ग्राम नगर में जो दिखता है। उस सब को जीव हि करता है
उस से जीव की बल अरु वृद्धि। प्रकट होंइ सह ऋद्धिः सिद्धिः
कृत्रिम रचना मनुष्य बल है। हमरा वैभव जिस का फल है
भूरुप वैभव है अति भारा। सो मनुष्य बल का हि पसारा
मन से ईश्वर वहुत बड़ा है। उस का अन्त न जान पड़ा है
बल की तोल बोझ से होती। गबता है जो बोझ कहाती

विश्व की गरुता किसने जानी । जिन्हें ईश बल आश्रित मानी
उस का बल इस से हि बढा है । जासु सहारे जगत खड़ा है
ईश्वर बल है पाप विनाशक । जग में जीवन का है साधक
उस से सब की रक्षा होती । प्रजा सन्तति बीज है बोती
दुष्ट भाव सब जब हि निकालें । मन तें अरु आज्ञा को पालें
श्रेष्ठ कर्म से प्रसन्न होवें । अरु तब रक्षा को प्रभु आवें
उन की रक्षा में सुख भारा । जिन ने है यह जगत पसारा
जन जो प्रभु के आश्रय रहते । वह दुख कबहु न किंचित सहते
यातें प्रभु की शरणी आवो । दोनों लोक में कीर्ति पावो
बहुत सोय हो अब तो जागो । अपयश निरबलता को त्यागो

न यस्य देवा देवता न मर्त्ता
आपश् च न शवसो अन्तम आपुः ।
स परिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश च
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १५ ॥

नहि मारुत नहि पठितें गण नहि मनुष्य नहि लोक ।
अन्त ईश सामर्थ्य का पाते हैं सब लोक ॥
वह अपनी सामर्थ्य से व्याप रहा सर्वत्र ।
भू द्यौ अरु जन हृदय में सूर्य चन्द्र का नेत्र ॥
सब रचना से अधिक है इन्द्र शक्ति विस्तीर्ण ।
जो नूतन प्रजा करत जब हो जावै जीर्ण ॥
नित्य सत्य आनन्द मय इन्द्र प्रभु है सौम्य ।
महा अनुग्रह से करत धन युत हमरे हर्म्य ॥
कर है रक्षा सबन की बडी कृपा से नित्य ।
हम पर बहुत दयालु है इस को जानो सत्य ॥

बुद्धि विशिष्ट चार जाति हि हैं। ज्ञान की संभूति जिन को हैं
एक देव जो मारुत गण हैं। द्वितीय देवता हि ब्राह्मण हैं
तृतीय मर्त्ता मनुष्य जानो। चौथे लोक आदि को मानो
यह सब भगवत की घडना है। सो नहि जानत बल कितना है
ईश्वर का जो जगत धरै है। अरु पालन सब का हि करै है
पुत्र पिता का बल नहि जानै। जिसे मनुष्य असीम बखानै
तव को ईश्वर बल का पारा। पावै जो है जगत सहारा
थकित होइ कर बुद्धि फिरै है। जब ईश्वर बल बोध करै है
सो ईश्वर बल असीम हैगा। जासु अन्त कहु को पावैगा
वह बल सब की रक्षा करता। अरु सारे दुख उन के हरता
भूमि अरु आकाश के भीतर। जो कुछ है वह रखै निरन्तर
यातें प्रभु से हम मांगत हैं। करियो रक्षा पा लागत हैं
जब से प्रभु से विमुख भए हैं। तब से अगणित दुःख सहे हैं
सब कुछ अपना खो बैठे हैं। और अधो गति में पैठे हैं
बांह पकड़ हमें प्रभु उठावो। और उन्नति रथ में बिठावो
धर्म मार्ग पर उसे चलावो। मन में विद्या जोत जगावो
यातें सदा आप को देखैं। शुभ गुण कर्म आप से सीखैं
जिससे फिर दुख कबहु न पावैं। और आप का यश नित गावैं
सब सुख है प्रभु नाम रटन में। मोक्ष मार्ग है प्रभु सिमरन में
जिस में मनुष्य शक्ति पूरन हो। अरु जगदीश्वर का दर्शन हो
जो न इन्द्र को ब्रह्म हि मानै। वो इस मंत्र नु आय बखानै
यहां इन्द्र है जगत विधाता। जिस का अन्त न कोई पाता
फिर उस के ऊपर कहु को है। जो नहि तो सब झूठ बको है
क्यों न तुमैं हम वेद विरोधी। मानैं पौराणिक दुष्टा धी
सर्व पुराण यही बकते हैं। इन्द्र नु सब हि हरा सकते हैं

गोवरधन अरु खांडव वन की। कथा पढो मघवन हारन की
यह नास्तिकपन नहि तो क्या है। जिस में प्रभु अपमान किया है
नास्तिक लोगों ने यह मेला। ग्रंथों में हम से छल खेला
शास्त्रार्थ में जब वह हारे। तब हम को इस विध उन मारे
सो यह कथन ऋषिन का नहि है। जिन का परमेश्वर इन्द्र हि है
वह है हम सब का पितु माता। सो पूजो जो जगत विधाता
पढ कर ठीक पुराण नु करदो। ऐसे लेख नु क्षेपक लिखदो

रोहिच् छ्यावा सुमदंशुर् ललामीर
द्युक्षा राय ऋजाश्वस्य।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं
मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु॥ १६॥

द्यौ भू मय जो सृष्टि है वह दो गुण सपन्न।
रोहित् श्यावा नाम हैं रक्त श्याम दो भिन्न॥
रोहित तो वढता रहे सो गुण जगत विकाश।
श्यावा शी से वना है सो शोधक जग नाश॥
बढना घटना जगत का ईश्वर के आधीन।
जिस से प्रजा में होत हैं हर्ष शोक वढ हनि॥
द्यौ भूमिः वहु ब्रहत हैं जहां प्रजा है वीर।
ईश्वर धन आगार हैं नाशत सब की पीर॥
मनुज देह रथ सदृश है उपज करै दिन रैन।
सब से श्रेष्ठ योनि यही जिस में है सुख चैन॥
इसी में मुक्ति कर्म हों भले बुरे का ज्ञान।
शूर वीरता दया अरु ईश्वर अर्चन ध्यान॥

इस को जो वरतैं सदा वेद धर्म अनु कूल।
उन को बल विद्या मिलै जो हैं धन का मूल॥

जब तक इच्छा प्रभु की हूंगी। तब तक सृष्टिः बढ़ घटैगी
उसे न कोऊ मिटा सके है। प्रभु भिन्न कोइ नहीं सूजे है
यातें यह नहि मानो भाई। नहि प्रकृति को ईश बनाई
बढ़ती घटती उसे जनाती। आप हि आप न वह है आती
नाम हि रचना को वत लावैं। को क्यों इसको फिर झुट लावै
पार न इस का कोऊ पावा। जिन सोचा सो ईश बतावा
इसका कर्त्ता धर्त्ता स्वामी। वह हि जीव का अन्तर यामी
वह वीरों को गुण है देता। धन वल यश गृह शक्ति समेता
रथ समान सब देह बने हैं। जिन में जीव कर्म करते हैं
इन देहों में श्रेष्ठ मनुज का। जिस में साधन ईश मिलन का

एतत् त्यत् ते इन्द्र वृष्ण उक्थं
वार्षा गिरा अभिगृणन्ति राधः।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिर् अम्बरीषः
सहदे॒वो भयमानः सुराधाः॥ १७॥

हे प्रभु दीन दयालु हरि सुख वृष्टि ह कर्त्तार।
हम सब तेरे पुत्र हैं सुनियो विनय हमार॥
बुद्धिमान जो मनुज हैं और गिरा संपन्न।
तेरी स्तुति नित करत रहियो सदा प्रसन्न॥
जो तो कूं सिमरण करत पापों से भय भीत।
और जो धन को धर्म से अर्जैं सब के मीत॥
ये सब विन्ति ह करत हैं हृदय से तेर पास।
फिर हमको उन्नत करो भगवन जग न्निवास॥

प्रभु तुम अगणित सुख दाता हो । सर्व ठौर हमरे त्राता हो
यह स्तुति जो मंत्र से कीनी । स्वी कृत हो हे सर्व ज्ञानी
गण न सकैं प्रभु दान को तेरे । हमें रखत नित अपने मेरे
यातें हमरी बल अरु बुद्धिः । बढत रहे अरु जग में सिद्धिः
जो ज्ञानी वक्ता अरु योगी । पाप से डरैं ऋजु धन भोगी
ये जिज्ञासु सहित नित गावैं । अरु तेरे गुण सब हि सुनावैं
यातें धर्म को जन न छोडैं । तव दर्शन से मुख नहि मोडैं
तुझे छोड़ बहु दुख हम पावा । संपत सुख अरु मान नसावा
सुन्दर भूमि जो प्रभु बनाई । जासु उपज से भूख नसाई
बहु अन्न की भइ कठिनाई । जो रिपु कीन अपना हि भाई
प्रीति जब यह दरिद्र मिटावे । अरु आपस से फूट हटावे
तब भगवन पूजा तब होवे । मनुज असत में आयु न खोवे
विद्या बढे अविद्या जावै । सब की उन्नति सब को भावै
वेद धर्म सब में हो जावै । जिस में हि शान्ति दुनिया पावै
नर को देवी पुनः बनावे । विद्या दीपक यहां जगावै
जिस से सत्य मार्ग सब देखैं । तव दर्शन के साधन सीखैं

दस्यूञ् छिम्यूँश् च पुरुहूत एवै
हत्वा पृथिव्यां शर्वा निबर्हीत् ।
सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्नेभिः
सनत् सूर्य सनद् अपः सुवज्रः ॥ १८ ॥

जगत पूज्य शुभ वज्र धर इन्द्र मरुत गण साथ ।
चौर हिंसक को मार के सुख देता जग नाथ ॥
जल वर्षा कर भूमि को करत उपज के योग्य ।
सूर्य तपा कर तेज से वस्तु बनावत भोग्य ॥

इस विधि रचता जगत को रक्षा करत महान ।
बीज दुःख का वुवत है हमारा हि अज्ञान ॥

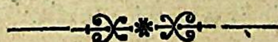
सच्चा स्वामी इन्द्र हमारा । जिस ने विश्व रचा है सारा
जीव जन्तु पदार्थ जड़ नाना । जासु वृन्द है जगत समाना
जिन के भाव चाव व्यवहारा । देख हर्षता हृदय हमारा
ये सब हैं ईश्वर की रचना । मूक जीव जिन किया सवचना
इन का हानि कारक दस्यु है । अरु घातक का नाम शिम्यु है
वज्र से इने मार सुख वृष्टि । पृथिवी पर अरु सुमोदित कृष्टि
दुष्टों को इन्द्र हि मारै है । उन से सज्जन लड़ हारै है
सो भगवत को जग पूजै है । अरु न अन्य पाता सूजै है
हमें मुक्त कर सखा बनावै । ज्योतिर्मय वपु दे पहिनावै
भूषण ज्ञान शौच्य बुद्धि के । अधिकारी कर ऋद्धि सिद्धि के
तमः निवार ज्ञान विकाशै । सो सब पाप कर्म को नाशै
मेघों से पानी वरसावै । खेती सींच अन्न उपजावै
सब तृप्त होंय जिस से प्राणी । धन्य वाद की उठती वाणी
ऐसे प्रभु ह छोड जो ध्यावैं । मनुज वस्तु जड़ सो दुख पावैं
भारत गारत इस ने कीना । धन धरती विद्या को छीना
जब हि वेद ध्वजा फहरावै । धर्म वित्त सुख घर में आवै

विश्वाहेन्द्रो अधि वक्ता नोअस्तु
अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१५॥

हे जगदीश्वर इन्द्र हरि करियो कृपा विशिष्ट ।
सदा प्रेम से बोल के रखियो धर्म निविष्ट ॥

अन्न दान करते रहैं वेद धर्म विख्यात।
यातें जग में मनुज पशु सुख पावैं दिन रात॥
प्रभो जो स्तुति कीन हम वह करिये स्वीकार।
और विश्व वासी करैं तेरी जय जय कार॥

हमरी स्तुति सुनिये स्वामी। यद्यपि हम हैं पापी कामी
सदा कृपा से बोलत रहिये। हमें दूर पाप से रखिये
गृह धन धान्य से पूरित करिये। रक्षा हस्त शीर्ष पर धरिये
अन्न दान हम से नित होवै। अभ्यागत निराश नहिं जावै
सब का आदर करते रहवैं। दुःख तनक न कोइ को देवैं
विद्वज्जन की सेवा करवैं। पशु पालन में तत्पर रहवैं
देश को फिर वैकुंठ बनावैं। जिस में जीव जन्तु सुख पावैं
यह स्तोत्र सब जग में फैले। ताकि रहै न कोइ मन मैले



॥ भजन ॥

तुम विन कौन सहाय करैगो। हे दीनन की पीर हरैया॥
मैं अति दीन मीन ज्यों जल में। परी भमर विच मेरी नैया॥
सूझत नाहीं खेवन हारो। हरि विन कौन है पार लगैया॥
रक्षा करो हो पाप से सब की। हे अभिमान के मान घटैया॥
पाप दूर कर भक्त उबारो। उन्हें स्वर्ग को राज दिवैया॥
सुख संपत के सब कोई साथी। सुत दारा भैया और मैया॥
भीर परे कोई तीर न आवे। फेर न जगमें बात बुझैया॥
तुम ही से अब आश हमारी। करहु कृपा हे शक्ति दिवैया॥
हाथ जोड कर विनती करत हों। लेव शरण प्रभु जगत् करैया॥
हम पापी कामी अरु क्रोधी। तुम हो प्रभु सब क्षमा के करैया॥

ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १०१

॥ ईश्वर का सख्य ॥

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो
यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

पूज्य इन्द्र की हे मनुज नमस्कार के साथ ।
स्तुति कर वेद स्तोत्र पढ जो हैं जग के नाथ ॥
अरु जो नर्जन शस्त्र से अन्ध हृदय को शोध ।
ज्ञान की दीप्ति उदय कर दुःख का करैं निरोध ॥
प्रभु रक्षा हम चाहते जग का दहना हस्त ।
वज्र युक्त है जगत की रक्षा हेतु समस्त ॥
मुक्त जीव रहते सदा जगन्नाथ के पास ।
स्वयं अमर पद पा गए सब को देत हुलास ॥
नित्य मनन से होत है सख्य प्रभु का प्राप्त ।
मरने से नहि टूटता जब हो आयु समाप्त ॥

अति बलवान् इन्द्र स्वामी हैं । रक्षा हेतु सर्व गामी हैं
शासन दण्ड वज्र धारी हैं । हम सब के रक्षा कारी हैं
प्रभु की भक्ति नम्रता चाहै । स्तुति उचित को वेद रचा है
प्रभु सेवा हि अन्धतम नाशै । ज्ञान की दीप्ति पुनः प्रकाशै
यातें पाप पुण्य सब भासै । फिर न पाप जीव को फांसै
यही जीव की मुक्ति कहावै । तत् पश्चात् वह स्वर्ग को पावै
प्रभु समीप वह रहै निरन्तर । विद्या से पूरित अभ्यन्तर
औरों की नित करै सहाई । सोई प्रभु की कृपा कहाई
यही सख्य प्रभु का है भाई । जा बिना रह जीव दुखाई

प्रभु सिमरण से सख्य मिलै है। जो नमता मन से हि करै है
मुक्त जीव ... रक्षा पावै। सो कदापि नहि पुनः नसावै
जीव जो प्रभु कोल हैं रहते। पाप कभी न तनक हैं करते
सदा पुण्य कर्म करते हैं। प्रभु की आज्ञा से विचरैं हैं
यही मुक्ति से आना जाना। ऋषि मुनियन ने निश्चय माना
कर्म वन्ध में नहि गिरते हैं। यद्यपि कर्म नित्य करते हैं
फल वांछा उन की नहि होवै। प्रभु के कार्य में सुख हि होवै

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः
शंबरं यो अहन् पिप्रम् अव्रतम्।
इन्द्रो यो शुष्णम् अशुषम् न्यवृणङ्
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥

सिमरो भगवत इन्द्र को अमित शक्ति सर्वज्ञ।
जो नाशत हैं व्यंस को जो रोकत है यज्ञ॥
अरु शंवर को मारते जो धन हरत है नित्य।
दूर करत हैं पिप्र को जो नहि करता कृत्य॥
और हटाता शुष्ण को जो शोषत सव लोक।
जाहि न कोई शोषता जग में लाता शोक॥

अस कहत तोड़न को भाई। सोई व्यंस है अति दुख दाई
भगवत निमित वस्तु को तोड़ै। पाप से नहि जो मुख को मोड़ै
सो पापी जन व्यंस कहाई। जिसे हनै भगवत् प्रभुताई
शंव इकट्ठा करना होता। सो शंवर जन धन हर लेता
सव का धन हारी जो होता। जग में दुःख वहुत फैलाता
प्रभु हि दया कर वाह हटावै। और जगत का दुःख मिटावै

प्रभु कहँ इधर उधर डोलन को। सो पिप्रु नहि करत यजन को
तातें वह नित पाप में डूबै। पुण्य कर्म नहि हाथ से छूवै
उस से किसी को लाभ न होवै। जो वरतै उस संग सो रोवै
उसे दूर कर सुख फैलावै। प्रभु माया यह वेद बतावै
शुष है नाम शोषन पीडन का। शुष्ण हेतु है दुख फैलन का
जिसे कोइ न सुखा के मारै। और लोक के दुख को टारै
जासु मार हरि हर्ष बढावैं। शोक रोग सब दूर भगावैं
ऐसे प्रभु को जो नहि सिमरै। तिह आये दिन विपत हि घेरै
इस का उदाहरण है भाई। दशा हिन्द की जो दुख दाई
इन्द्र छोड वीरों को पूजत। दुष्ट ग्रंथ पढ़ पाप में सीजत
भूल गए प्रभु को जो पालै। जासु बिना नहि दुख कोउ टालै
सो अपमान अरु हानि सहत हैं। कोइ न उनकी मदद करत हैं
सब कुछ रखने पर नहि पाते। मान जगत में नहि शरमाते
जिन ईश्वर का मान न कीना। जग ने अपमान हि उन दीना
जग में जितने हैं शिक्षित जन। वह सब पूजत ब्रह्म सनातन
इसी हेतु उन्नत हैं जग में। पर बंधन है हमरे पग में
श्रेष्ठ देश में भूखों मरते। धरम छोड अधरम को करते
ऐसी दशा त्याग दो भाई। अरु आवो प्रभु की शरणाई
आपस का जो द्वेष मिटावै। जगत उन्नति हि झट ले आवै
जब ऐसा हि करोगे भाई। ईश सख्य तब होय सहाई

यस्य द्यावा पृथिवी पौंस्यं महद्
यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥

हम सिमरत हैं ईश को जासु नियम अनुसार ।
चलत हैं भू द्यौ रवि शशी सरत आदि संसार ॥

पृथिवी अरु आकाश के तारे । सूर्य चन्द्र नहि जिनसे न्यारे
सब के सब ईश्वर ब्रत पालैं । जासु नियम में उन की चालैं
जो जन इन को नाहि विचौरे । वह ईश्वर को शीघ्र विसारै
उस के मन में धर्म न रहवै । शुभ आचार को वह नहि गहवे
अतः जान ज्योतिष का पढना । मानो ईश्वर ज्ञान में बढना
ज्योतिष विद्या अति उत्तम है । यातें वेद अंग संमत है
फिर पृथिवी की रचना देखो । जिस से ईश्वर महिमा सीखो
आठ हजार मील का गोला । ज्योतिष नें लोहे सम तोला
निरालंब आकाश में फिरता । सूर्य गिर्द अरु नाहि ठिहरता
अड़ सठ हजार कोस जाता है । घंटे में अरु ऋतु लाता है
धुरी के गिर्द गति से होते । दिन रात्री जन जगते सोते
भू परिक्रमा चंदा देता । सूर्य तेज से चमक को लेता
सूर्य भी निश्चल नहि भाई । सब नक्षत्र ईश प्रभु ताई
मेघ गिरिन पर हिम वर्षाते । जिसे किरण हैं नदी बनाते
रात दिवस मृतिका को ढाता । सरत नीर सागर को लाता
वहां जाय नई भू बनती । भू कंपन से ऊपर आती
पुनः पवन पक्षी ला बोते । बीज जिनो से वृक्ष हैं होते
इस प्रकार अन्न उपजाता । ईश अहर निश सृष्टि बनाता
इस जग में ठहराव कहां है । इसी हेतु संसार कहा है
यह सब ईश्वर नियम का चलना । द्योतत उसके सख्य का मिलना
चलो ईश्वर नियम पर भाई । यातें पाव यहां प्रभुताई
विना सहाय भगवत की सिद्धि । जीव की नहि होती अरु बुद्धि

—o—

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर् वशी
य आरितः कर्मणि २ स्थिरः।
वीडोश्चिद् इन्द्रो यो असुन्वतो वधो
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥

हम सिमरत हैं इन्द्र को सहित मरुत परिवार।
करै सहाय अरु अनुग्रह हम पर वह करतार ॥
जो जड़ जंगम का वशी जो पूरित संसार।
है सब कर्म अरु ठौर में विश्व का धारण हार ॥
विना कृपा महाराज के नहि मिलता सुख नित्य।
सोइ कृपा प्रभु करत हैं जो करवै शुभ कृत्य ॥

अश्व का अर्थ जग माना है। अश धातु का अर्थ खाना है
जगत भोग्य है सब ही जानै। उस में तारा गण बहु मानै
सोई कभी वसुः कहलाते। जिन में वास भोग सब पाते
सब हैं जीव के भोग बनाये। जिन में नाना सुख कवि गाये
इन सब का ईश्वर है स्वामी। और जीव का अन्तर्यामी
गम जाने से गो बनता है। जिस का अर्थ जन्तु गन्ता है
विना जीव नहि स्वतः क्रिया है। जीव हि क्रिया मूल पाया है
सो ईश्वर जीवों का स्वामी। वेद कहै वह सब का जामी
सो मालिक हमरी सुध लेवै। संकट काट सुख हम हि देवै
भजो निरन्तर जगदीश्वर को। सुख पहुचा प्राणी मात्तर को
उस से भिन्न और नहि स्वामी। वह शासन कर्त्ता निष्कामी
वशी यहां इस हेतु कहा है। जिस का बल अत्यन्त महा है
सब की स्तुति का श्रोता है। सब के कारज का द्रष्टा है
बड़ा बली दुष्टों का यन्ता। सत्य धर्म शत्रुन का हन्ता

विन प्रभु कृपा धर्म नहि चलता। ना मरज़ी विन पत्ता हिलता
क्योंकि जगतकी जान हि कर्त्ता। जो होता वह उस का ज्ञाता
सो अवश्य रक्षा वह कर हैं। जव हम दिल से पाप से डर हैं
पाप हि छोड़ पवित्तर होवैं। तव ईश्वर के दर्शन पावैं

यो विश्वस्य जगतः प्राणतः पतिर्
यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँ रधरां अवातिरन्
मरुत्वंतं सख्याय हवामहे ॥ ५ ॥

इन्द्र विश्व के पतिः हैं जहां रहत सव जीव।
जिन में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं पठित पवित्र अतीव ॥
वाह दीन महाराज ने वेद ज्ञान का मूल।
जिस को पढ कर शुद्ध हो बुद्धि धर्म अनुकूल ॥
और जो अपहित करत हैं उनका करै विनाश।
धर्म शील की बुद्धि का करता ज्ञान विकाश ॥
ऐसे प्रभु को सिमर कर मागैं नित्य सहाय।
हमरा यह विश्वास है नहि सुख उसे विहाय ॥

जो दिखता सो विश्व कहाता। उस में वस सुख दुख जन पाता
जैसी यह पृथिवी हमरी है। वैसी वहु से दिशा भरी है
सूर्य चन्द्र तारा गण जो हैं। सो अगणित अकाश में वो हैं
एक से एक वढा हि भाई। सव व्यापत हरि की प्रभुताई
ईश्वर इन सव का स्वामी है। कर्त्ता धर्त्ता और यमी है
ब्राह्मण को दी वेद की वाणी। जिस से सुख सव पावैं प्राणी
जो मनुष्य सव को दुख देवै। उसे प्रभु ह नीचा कर देवै

अन्य दुष्ट जन का यन्ता है। अरु दस्यू जन का हन्ता है
यातें सब जन सुख को पावैं। सायं प्रातः प्रभु. गुण गावैं
जिससे आत्म वली हो जावै। और पाप के वश नहि आवै
प्रभु से सदा सहाय हि पावै। यातें सुख में काल वितावै
देह पात पर स्वर्ग को जावै। और मरुत गण में मिल जावै

यः शूरेभिर् हव्यो यश्च भीरुभिर्
यो धावद्भिर् हूयते यश्च जिग्युभिः।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥

सर्व शक्ति मत इन्द्र को महा शूर बलवान।
आवाहन मन में करत मागैं रक्षा दान ॥
भय पूरित संसार में रक्षा याचैं नित्य।
दया वान भगवान से और करैं शुभ कृत्य ॥
जन जो रण से भागते वह भी रक्षा दान।
मागैं चरणों शीश धर सो पाते हैं त्राण ॥
वह जो जय पाते यहां प्रभु का करैं महान।
यश अरु देते प्रभु हि को धन्यवाद तज मान ॥
एवं सारे जगत में सब सिमरैं हैं इन्द्र।
जो सृष्टा है विश्व का सहित सूर्य अरु चन्द्र ॥
ईश्वर स्मरण देत है आत्मिक बल सुख पोष।
सो सहाय है इन्द्र की जो देता है तोष ॥

विन प्रभु कृपा शूर न होई। कितने कर्म करै जन कोई
अंग पुष्ट बलिष्ठ अरु ऊंचा। आत्मिक बल से वह है नीचा
सो आत्मिक बल भगवत देता। यातें बीर इन्द्र गुण गाता

प्रभु सहाय विन विजय न होवै। कितना ही बल जन लड़ खोवै
योधा यातें रक्षा मागैं। प्रभु से कर सिर से पा लागैं
ऐसा ही ऋगवेद सिखावै। प्रभु सिमरण से जय नर पावै

यस्मान् ऋते न विजयन्ते जनासः।
यं युध्यमाना अवसा हवन्ते ॥मं०—२सू०१२

समझदार नहि हो अभिमानी। प्रभु से विमुख होत अज्ञानी
देखो तुलसी दास सिखावैं। ईश्वर शरण में जन सुख पावैं

हारिये न हिम्मत विसारिये न हरि नाम।
जा ही विधि राखै राम ताही विधि रहिये॥

जव ईश्वर को हम पूजत थे। तव जग में सव से उन्नत थे
जव से ईश्वर पूजा छोड़ी। और वहुत सी माया जोड़ी
लुट पिट कर पशु वत वेचे गए। धर्म नाश कर पैरों रुँध गए
अव ऐसे गाफिल हो गए हैं। मान अपमान में मूढ़ भए हैं
धर्म अधर्म को नहि समझैं हैं। शत्रु मित्र को नहि जानैं हैं
अन्ध सदृश यातें विचरैं हैं। विपत वहुत वे नित्य भरैं हैं
सव सुख सिद्ध होय जलदी से। हम को एक ईश पूजा से
सो जो समझदार हो भाई। प्रभु की शीघ्र लेव शरणाई

रुद्राणाम् एति प्रदिशा विचक्षणा
रुद्रेभिर् योषा तनुते पृथुज्रयः।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥

इन्द्र विखेरै प्राण को जाको नाम है रुद्र।
योषा शक्ति ह मिलन से वाढ़ै तेज समुद्र॥

शुद्ध बुद्धि पूजे प्रभु इ जो सब में विख्यात ।
जिस के संग में मरुत हैं ताह भजो दिन रात ॥
उस के सिमरण से बहुत लाभ होय जग मांह ।
यहां से जावे स्वर्ग को इस में संशय नांह ॥

रुद्र प्राण का नाम बताया । ताह फैलावे इन्द्र की माया
माया को शक्ति हि मानी है । प्रभु सन्तति जिसने तानी है
प्रभु बल का विस्तार किया है । जिस ने सबको सुखहि दिया है
प्रभु की यह दैनी जो जानी । सो है शुद्ध बुद्ध विज्ञानी
वह ईश्वर को मन से पूजे । उसे प्रभु सब ठौर में सूझे
ध्यानावस्थित हृदय में होवै । विद्या ज्योति जहां से पावै
ईश तेज से दीपित होता । यातें शुद्ध बुद्धि हो जाता
पाप मैलवत सब झड़ जाते । ज्ञान अनामय बल आ जाते
यही इन्द्र का सख्य कहाया । जिस ने मृत्यु भय को भगाया
फिर संसार से मरना ऐसा । अन्य भवन को जाना जैसा
मरण समय मूर्छित नहि होवै । ज्ञान को जीव नहि फिर खोवै
सदा ज्ञान बढ़ता ही जावै । स्वर्ग में दिव्य सुख वह पावै

यद् वा मरुत्वः परमे सधस्थे
यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आयाह्यध्वरं नो अच्छा
त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥

हे प्रभु इन्द्र महाबली सहित मरुत परिवार ।
ऊपर नीचे व्याप्त हो कृपा करो करतार ॥
हमरी पूजा शुद्ध कर हमें देउ वरदान ।
आप की भक्ति में रहैं और करैं गुण गान ॥

तेरी पूजा के लिए हमने रचिया याग।
सो पवित्र कीजै हरे जागै हमरा भाग॥

इन्द्र पूज, नर बल को पावै। मर कर मुक्त जीव हो जावै
ईश्वर संग सदा को पावै। अरु मारुत गण में मिल जावै
ईश्वर की यह बढी कृपा है। हमें राखता निकट सदा है
जो पाना था सो पाते हैं। जब उस के पथ पर जाते हैं
उस का मार्ग वेद बतलाता। जिस पर चल नर दुख नहि पाता।
मित्र समान अन्य को देखै। पशुओं पर करुणा को सीखै
सत्य वचन कबहू नहि त्यागैं। भोजन के श्रम से नहि भागैं
यथा शक्ति औरों को देवै। कपट छीन कर धन नहि लैवे
विद्या से मुख को नहि मोड़े। ईश्वर का सिमरण नहि छोड़े
सब के सुख में मोदन कीजै। द्वेष भाव से उपरंत हूजै
वेद पन्थ कैसा सुख कारी। फैल सकै पृथिवी पर सारी
फैला ओ अय भगवत प्यारो। जातें जाय पाप अंधयारो।

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष
त्वायः हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिर्
आस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व॥ ९॥

हे प्रभु जी हम चाहते तव दर्शन हो जाय।
यातें मन निष्पाप हो धर्म इह में लग जाय॥
आवाहन कर मंत्र से सोम करैं उत्पन्न।
हम को बल धन बुद्धि से शीघ्र करो संपन्न॥
हे कर्त्तः संसार के सहित सुसेवक वृन्द।
आकर हमरे यज्ञ को सफल करो जग कन्द॥

सोम नाम मुनि कृषि ह बखाना । जासु हेतु वह राजा माना
सू धातु ह से उसे बनाना । जिसका अर्थ जनन उपजाना
प्रभु पूजा कर कृषि जो करता । वह नर भूख से कभी न मरता
प्रभु चिन्तन मन निर्मल करवै । जिस से बल बुद्धिः धन पावै
प्रभु की ज्योति मंत्र से जागै । फिर अज्ञान तिमर सब भागै
प्रभु किरपा से कारज सुधरै । सदा नर अभिमान से बिगरै
जितने बढे कार्य जन कीनै । नहि हुए प्रभु नाम बिन लीनै
सो प्रभु का आवाहन जब हो । अरु उपकार अर्थ कारज हो
निसंदेह सिद्धिः उस में हो । फिर अवश्य वृधिः जग में हो
प्रायः क्रिया स्वार्थ से होती । पर वृद्धि उपकार से होती
धर्म अनुसार स्वार्थ न अनुचित । श्रेयस्कर उपकार यथोचित
सो कर कार्य ईश सिमरण कर । निरभिमान हो जगत मान्यवर

मादयस्व हरिभिर् ये त इन्द्र
विष्यस्व शिप्रे विसृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तु
उशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥

सहित मरुत गण इन्द्र हरि हम पर होउ दयालु ।
जंगम जड दो शक्ति को प्रेरो महा कृपालु ॥
उन दोनों के ज्ञान का हम में हो परकाश ।
यातें सुख हो सबन को और दुःख का नाश ॥
हे प्रभु इन्द्र सुपर्ण हरि सर्व शक्ति के साथ ।
आकार हमरे हविः को लीजै दीना नाथ ॥

हरि बहु वचन मरुत का द्योतक । शिप्र शब्द शक्ति प्रति पादक
धेना नाम वाक का माना । अथवा नदी जहां जल पाना

विष धातु प्रेरण का बोधक। विसृज है छोडन का वाचक
सो प्रभु शक्ति द्विविध कही है। जंगम चेतन जड़ व्यक्ति है
इन को उत्तेजित हरि करते। अरु संसार की व्यक्ति घड़ते
पुनः मनुज के मन में डालैं। ज्ञान दीप्ति अरु सब को पालैं
रक्षार्थ व्यापक सब जग में। वस्तु न कोई वह नहि जिस में
जब ईश्वर दयालु होता है। तब शुभ कर्म सफल होता है

मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा
वयम् इन्द्रेण सनुयाम वाजम्।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥

इन्द्र मरुत गण प्रभु से हाथ जोड़ कर दान।
मांगैं हमको अन्न दे धन यश जग में मान॥
हमारे इस स्तोत्र की महिमा हो सर्वत्र।
जब तक सूरज चन्द्र हैं द्यौ पृथिवी नक्षत्र॥
यातें सब को सुख मिलै धर्म में वृत्ति होइ।
रोग घटे आयुः बढै धन सन्तति बहु होइ॥

इन्द्र प्रभु मारुत गण स्वामी। दुःख निवारक अन्तर यामी
यह स्तोत्र जो हमने गाया। स्वीकृत कृपा से हो जग राया
जब तक सूर्य चन्द्र तारे हैं। और जीव ईश्वर प्यारे हैं
इस को पढ ईश्वर गुण गावैं। ईश्वर बरकत अगणित पावैं
ईश्वर भक्त सौम्य मन होते। सब जीवों पर दया हि करते
औरों का धन कभी न हरते। विद्या की वृद्धिः नित करते
आप सुखी हो सुख फैलाते। पाप से सब को दूर हटाते
मित्र भाव सब के संग वरतैं। सब को सुख मांगैं नित हर तैं
पर हित में नित तन मन धन दैं। सपने में न किसी को निन्दैं
यह वैदिक उपदेश सुनावो। सब को सच्चा ज्ञान जनावो

ऋग्वेद १ मंडल ८० सूक्त

स्वराज्यं (किंगडम आब हेविन)

स्वतंत्रता दान

इत्था हि सोम इन् मदे ब्रह्मा चकार बर्द्धनम्
शविष्ठ वज्रिन् ओजसा पृथिव्या निःशशा अहिम्
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥

स्वर्ग में सृष्टि के समय हर्ष भयो घन घोर।
ब्रह्मा मारुत वर्यने स्तुति हर की कर जोर॥
ईश्वर अपने राज्य को सदा रखै सर्वत्र।
ऐसा ब्रह्मा कहत हैं चित धर सुनिए मित्र॥
सर्व शक्तिमन् वज्र धर इन्द्र सृजक जगपाल।
बल से परे हटावते अहि भू बाधक व्याल॥
अहि हन्ता अरु तिमर है पाप हेतु अज्ञान।
ता हि मूल से मारता पिता इन्द्र बलवान॥
तब सुख मिलत है जीव को जासु हेतु संसार।
अद्भुत अपनी शक्ति से रचता है करतार॥

सोम सृष्टि का नाम हि जानो। मद उस का अवलोकन मानो
मनुज सृष्टि जब इन्द्र बनाई। तब मरुतों ने खुशी मचाई
उस शुभ अवसर पर जो कीनी। स्तुति ब्रह्मा मरुद् अग्रेणी
भव सागर की उत्तम तरणी। सो सुनलो अय सज्जन श्रेणी
प्रभु ने अद्भुत सृष्टि रचाई। और मुदा जग में उपजाई
उसके राज्य की नीति विचारो। फिर अनुकरण चलन में धारो
जैसे प्रभु बाधक हि हटावै। अरु स्वतंत्र सब जीव बनावै
जिस से इच्छित कर्म करैं सब। प्रभु आगे हिसाब दह हों तब

जिस शुभ कर्म में बल को याचैं । प्रभु वह दें यदि अच्छा जाँचें
शुभ उ अशुभ का ज्ञान वढावो । सदा वेद को पढो पढावो
विधि निषेध सब वेद बतावै । जिस से कर्म बोध हो जावे
फिर पृथिवी पर सुख जन पावै । अरु मरणान्तर स्वर्ग को जावै
यह स्पष्ट सोच से होगा । और तजरवा विदित करैगा
अन्य धर्म जो जग में हैंगे । उन से तुम मायावी होगे
जग वैभव वह तुमैं बतावैं । अरु इन्द्रिय सुख तुमैं सिखावैं
औरों का अपकार करावैं । अपना इन्द्रिय सुख हि वढावैं
जो अधर्म विद्या दिखलावे । ताहि धर्म दुनिया सिखलावै
यातें अन्त भद्र नहि होई । पछतावो गे आयुः खोई
वेद धर्म जीसने सिखलाया । स्वर्ग राज्य पृथिवी पर लाया

बल दान

स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः । येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्न ओजसा अर्चन्न् अनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

श्या धातुः गति अर्थ है जो गति से संपन्न ।
श्येन नाम है जीव का होत है वही प्रसन्न ॥
जग पदार्थ की प्राप्ति उपजावत मन मोद ।
जिससे जीव वृषा वनत अरु हो जगत विनोद ॥
ईश्वर इस से तृप्त हो बाधक वृत्र भगाय ।
मू स्वतंत्र बल से करत निर्भयता फैलाय ॥

अद्भ्यः जल से जग को जानो । पंच भूत लक्षणा हि मानो
जहां अंध मे सूझत नाहीं । सत्य असत्य कार्य के माहीं
सो प्रभु ज्ञान ज्योत दीपै है । और जीव को योग्य करै है
देखो यह उपकार है कैसा । नाहि रत्न जग में उस जैसा

क्यों नहिं फिर ईश्वर तुम ध्याते। और पिता का खोज लगाते
जिस से ईश्वर राज्य तुमारा। बन जावै यह सब संसारा
ईश्वर ने यह तुम को दीना। तुम ने इस को झूठा चीना
खाली हाथ रह गए भाई। जिस से विपदा वहुत उठाई
अब जागो अरु करो मिताई। ईश्वर से जो हैं जग राई
जिस से दुःख दूर हो जाई। और मिलो भाई से भाई
ईश राज्य में सब हैं भाई। जब बन जावो तब हि भलाई
न्याय सदा ईश्वर वर्त्तत है। पाप दण्ड से वह नाशत है
इस से ईश राज्य प्रघट है। जहां जुल्म की नित जड पुट है
आयु ईश को अर्पो सवरी। सदा करैगा रक्षा तुमरी

अन्न दान

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नियंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपो
अर्चन्नु अनु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

निकट दूर सर्वत्र है विश्व का धरता इन्द्र।
उस का वज असह्य है जासु नेत्र रवि चन्द्र ॥
हम ईश्वर वल जानते अपनी जय का हेतु।
जिस ने वृत्र को मार के भू की दान का केतु ॥
शारीरिक सुख जगतमें उन की भूमि हि खान।
सो अधीन हमरे करी हो प्रभु नाम महान ॥
खान पान की पूर्णता ईश राज्य का चिन्ह।
हमरे कर्म विचार विन देत सवों को अन्न ॥

ईश्वर में है व्यापकताई। क्रिया ज्ञान बल औ प्रभुताई
स्वतः सिद्ध यह उस में हैं गे। प्रजा लोग पर तंत्र रहैं गे

उस के बल को यातें कोई। रोक सकै नहि जो कुछ होई
उस को दूर निकट हम पावैं। पाप कदापि न मन में लावैं
जैसे पितु सन मुख नहि करवैं। अनुचित कर्म उसी विध चलवैं
तव सुख हो नित मन के माहीं। बल बुधि बढै भय रह नाहीं
पाप करै निर्बल जीवों को। यातें सह न सकत रोगों को
मन प्रसन्न तन रहै निरोगी। जगत वस्तु का हो तव भोगी
सब हि पदार्थ ईश ने दीने। उन से बहुधा दुख हम लीने
ईश्वर बल का छोड़ भरोसा। जग में निर्बल नहि हम जैसा
ईश्वर है पर हम नहि मानैं। जासु गुणों को नहि पहिचानैं
इस से सुख नहि ईश राज में। और पराजय सब हि काज में
सो अब जागो प्रभु को मानो। नः क्षमस्व हे विचित्र मानो

संतान दान

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः।
सृजा मरुत्वतीरव जीव-धन्या इमा अपो
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

भू से ऊपर देश में वृत्र शत्रु को मार।
जीव युक्त वृष्टिः करो संतति बढै हमार ॥
शुद्ध जीव आवैं यहां पर जो निर्बल होंइ।
सांसारिक संसर्ग से भले बुरे वह होंइ ॥
सब वह मृत्यु विहीन हैं बल बुधि निज अनुसार।
हृदय शुद्ध सब होत हैं रंगै उने संसार ॥

वृत्र होय बाधक सृष्टिः का। जासु मरण कारण सिरजन का
जीवागमन हि जो बाधत है। दिवि विच ताहि इन्द्र नाशत है
तब हि वृष्टि हो जीवन गर्भा। शुभ संतान हमें हों सुलभा

ईश कृपा विन कुल नहि वाढ़ै। और न संतति भद्रा काढ़ै
सो ईश्वर की कृपा हि मागो। और अनर्थ सर्वथा त्यागो
जासे कुल संपत वढ़ जावैं। और मनुष्य भद्र हो जावैं
लोग देश में जद धार्मिक हों। विद्या धर्म शील उन्नत हों
करो प्रयत्न जहां तक होवै। देश सभ्यता कभी न जावै
इस का केवल यत्न यही है। सदा हि संस्कृत पठित गृही हैं
संस्कृत में पूर्वों की विद्या। जासु पठिन से जाय अविद्या
उन्नति है स्वाधीन हमारे। सो धार्मिक जन नाहि विसारे
ईश्वर हम पर किरपा करिये। हमको नित शुभ पथ पर धरिये।

॥ दुःख हरण ॥

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीडितः।
अभि क्रम्याव जिघ्नते ऽपः समाय चोदयन्
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

कंपित वृत्र समीप जा वज्र कंध पर मार।
क्रुद्ध इन्द्र अरु वृष्टि कर कृपया हेतु हमार ॥
हमरे पथ से वृत्र को अथवा विघ्न हि टाल।
सुख की वर्षा से करत हम को माला माल ॥
उस विन अन्य न विघ्न का जग में टारन हार।
हम निर्बल उस आसरे हमरा है निसतार ॥
हम सब उस की प्रजा हैं वह सच्चा ईशान।
हम को देता अन्न जल बुधि धन गृह संतान ॥

वृत्र शब्द वृञ से निकला है। जिस का अर्थ ढांकने का है
ढांकन से रोधन होता है। लोक इसे मुशकिल कहता है
त्र प्रत्यय अधि करण जताता। अथवा स्थान वस्तु वतलाता

सो वृत्र से वृ कर त्रः जोड़ो। वृत्रः मुशकिल का सिर तोड़ो
यह मुशकिल सब ठौर मिलै है। निर्बल का दिल देख हलै है
यही बात भर्तृ हरि कही है। वीरों ने सुन ताहि गही है

प्रारभ्यते न खलु विघ्न–भयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्न–विहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य उत्तम–जना न परित्यजन्ति॥

इस का भाव अर्थ यों जानो। तीन भांति के सब जन मानो
एक विघ्न से काम न लागैं। अन्य विघ्न देख उसे त्यागैं
वीर पुरुष न विघ्न से डरते। धर्म्य कार्य से कभी न टरते
रोक टोक को विघ्न कहा है। जिस का मुशकिल अर्थ करा है
अन्ध मेघ आवरण वही है। सूझत जिस में वस्तु नही है
सो मुशकिल को मेघ कहा है। मुशकिल कुश इन्द्र वृत्रहा है
मुशकिल वरजन शस्त्र वज्र है। अनन्त धारा सहित अस्त्र है
जितने स्थान वस्तु अरु समया। उतने मुशकिल कवि ने गाया
बचपन यौवन वृद्धा मुशकिल। कार्य शौच और वायु जल थल
सोई वृत्र बहु रूप कहाया। माया मृग मेघ हि बतलाया
विविध रोक अरु विविध उपाई। वज्र की धार सहस्र बनाई
बाधक वृत्र को बार बारा। हमरे लिए इन्द्र ने मारा
भगवत सारी मुशकिल टारै। यही अर्थ है वृत्र को मारै
जन्म से ले मरण पर्यन्ता। जीव विघ्न नाशै भगवन्ता
इन्द्र वृत्र की सदा लड़ाई। बार बार वेद ने गाई
वृत्र से मेह को अलग करै है। वर्षा से इः अन्न भरै है
मुशकिल से आसन करै है। जीवों के दुख नित्य हरै है
पालन पोषण इस विध करता। इन्द्र प्रभु जो सब का भरता

सुख उपाय

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शत-पर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुम् इच्छति
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥ ६ ॥

अगणित धारा वज्र से वृत्र कंध को काट ।
हम भृत्यों को अन्न दे यत्न दिखै विश्वराट् ॥
हम उस से नित मांगते मुशकिल हमरी टार ।
हम उपाय सब कर चुके तुझ से करैं पुकार ॥
तुझे छोड कित जांय हम तू हमरा है बाप ।
अब ऐसी किरपा करो होवै फेर मिलाप ॥
अभिप्राय तव राज्य का हमरा सुख है मुख्य ।
हम मूरख हो त्याजते तेरा बल युत सख्य ॥

इन्द्र अस्त्र है वज्र हि भारा । जिस की हैं तीक्षण बहु धारा
उसे वृत्र सानु हि पर मारै । इन्द्र देव अरु जल निः सारै
वर्षा से दाने उपजावै । जल से नदी तडाग भरावै
वनस्पति जो फूल फल लावै । क्षुधा तृषा वह रोग नसावै
इस से हम ने खेती सीखी । चिकित्सा लता तरु में देखी
क्षुधा रोग वत्र हि के रूपा । जगत में हैं मृत्यु के कूपा
इन से बचने की कठिनाई । इन्द्र वृत्र का युद्ध कहाई
हम निर्बल जब इन्द्र तु धावैं । तब जगदीश्वर वज्र उठावैं
जिस से काटैं वह कठिनाई । रूपक से वह वृत्र कहाई
संकट काट करैं सुख वृष्टिः । यातें हर्षित हो सब सृष्टिः
हर्ष उपाय बहुत हैं भाई । यातें धार सहस्र बनाई
उपाय के बाधक हैं धारा । जिन से विघ्न वृत्र को मारा

इस विध मुशकिल कुशा इन्द्र है। जो हम सब का मोक्ष केन्द्र है
इन्द्र छोड मर्त्यह जो ध्यावैं। वह दुख भाक अधो गति जावैं

स्तुतिः

इन्द्र तुभ्यम् इद् अद्रिवो ऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
यद् ध त्यं मायिनं मृगं तम् उ त्वं मायया वधीर्
अर्चन् अनु स्वराज्यम्॥ ७॥

हे प्रभु इन्द्र अगाध बल वज्र युक्त जगराय।
तेरा वीर्य विनाशता सर्व शत्रु समुदाय॥
उसी पराक्रम वीर्य से छली मेघ को दूर।
करत राज्य से हे प्रभो माया बल भर पूर॥
इस से तेरे राज में सब सुख पावैं लोग।
और बढावै धर्म धन विद्या शिल्प सुभोग॥

ईश्वर सर्व विश्व का राजा। जो दिखते सब उस के साजा
यहां कोउ का दखल नहीं है। काज में कोउ मुखिल नहीं है
जो इह विघ्न कपट करता है। वह हि अन्त को दुख पाता है
जो इस में हैं सर्व हितैषी। वह हि यशस्वी और मनीषी
छल फरफंद विघ्न करता को। शीघ्र हि मारैं सुख हरता को
उस की इच्छा सुख देना है। जीवतु जो उस की सेना है
कुटिलों के जाने से होती। राज्य में बहु चैन दिन राती
निर्भयता उन्नति की माता। वेद उसे हम को दिखलाता

अभयं नः करत्यन्त रिक्षम् अभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चाद् अभयं पुरस्ताद् उत्तराद् अधराद् अभयं नो अस्तु॥
अभयं मित्राद् अभयम् अमित्राद् अभयं ज्ञाताद् अभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तम् अभयं दिवा नःसर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

इस का अर्थ मुख्य यह जानो। भू द्यु आदि सब ठौर ठिकानो
भय न होय हम को उन माहीं। आगे पीछे जित कित जाहीं
मित्र शत्रु सब से भय जावै। रात्रि दिवस भय निकट न आवै
सदा प्रसन्न मन रहै हमारा। यह है ईश मनोरथ सारा
देखो प्रेम हम पर कैसा है। प्रभु का अन्य न उस जैसा है
ऐसे प्रभु को क्यों कर भूलैं। जिस के चिन्तन से मन फूलैं
जब तक यहां वेद को माना। सुखी रहै सब जन अरु राना
जब से प्रभु की पूजा छोडी। अरु माया से प्रीतिः जोडी
तब से विपद् देश में आई। वैभव सारा दिया मिटाई
अब असभ्य हम सब कहलावैं। लज्जा तनक न मन में लावैं

स्तुतिः

वि ते वज्रासो अस्थिरन् नवतिं नाव्या अनु।
महत् त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस् ते बलं हितम्
अर्चन् अनु स्वराज्यम्॥ ८॥

सर्व शक्ति मन इन्द्र हर तेरे वज्र अनेक।
वृत्र मार बहु वारि से नदी भरै प्रत्येक॥
तेरा बडा पराक्रम बाहू बल है अनन्त।
जिस से अपने राज्य में प्रजा करै निश्चिन्त॥

वज्र उपाय विघ्न को टारै। विघ्न हि वृत्र रूप बहु धारै
यातें वज्र बहुत हो जावै। और वृत्र वा रोक हटावै
रोक दुःख का कारण माना। सो दुख अरु कारण हैं नाना
यही हाल सुख का भी जानो। वेद ने नवति वाह बखानो
नाव्य नदी अरु नाव कहावैं। सो सुख के कारण बन जावैं
इन तें कृषि यात्रा होती है। बंज शिल्प विद्या बढ़ती है

श्रेष्ठ राज्य के लक्षण ये हैं। जो ईश्वर ने बता दिये हैं
लिखे सुवर्ण वर्ण में जानो। ईश ग्रन्थ जगत में मानो
सो प्रबुद्ध जन इनको बाचैं। प्रभु से करने का बल यांचैं
जब यह वेद नीति जन मानै। तब पावै सुख वेद बखानै

संघ का आह्वान

सहस्रं साकम् अर्चत परिष्टोभत विंशतिः।
शतैनम् अन्वनोनवुर् इन्द्राय ब्रह्म उद्यतम्
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥

मनुज हजारों एक दम पूजें श्री भगवान।
याजक बीस अनेक ऋषि नित्य करैं गुण गान॥
बड़ी नम्रता से करत आवाहन मन मांहि।
वेद मंत्र द्वारा सब हि फिर दुख पावैं नांहि॥
भासैं उन को वस्तु सब जैसी होवैं नित्य।
अरु समझैं प्रभु आज्ञा पाकर जो है सत्य॥

ईश्वर को अगणित जन ध्यावैं। उस की ऋषि मुनि जोत जगावैं
मंत्रों से आवाहन करवैं। दिल में ईश गुणों को धरवैं
बीस होम करता पूजें हैं। जासु नाम गोपथ में ये हैं
अध्वर्युः होता उद्गाता। ब्रह्मा प्रस्तोता उपगाता
पत्नी यजमानः प्रतिहरता। अच्छावाक सदस्यः शमिता
आत्रेय उ प्रति प्रस्थाता। आग्निध्र नेष्टा अरु पोता
मैत्रावरुण और उन्नेता। सुब्रह्मण्य योग के करता
मिल कर बैठ ईश को ध्यावो। कछुक काल में प्रकाश पावो
मन में अद्भुत हो उजियारो। जो नाशै अज्ञान हि सारो
प्रभु का अनुभव इस विध होवै। जीव की सब शक्ति बढ़ावै

इसे ईश का दर्शन कहते । फेर न लोग पाप में पडते
ये जन ईश्वर राज्य वढावैं । जग में दुख को दूर हटावैं
सुख संपत शान्तिः फैलावैं । बिछुरे हुवों नु फेर मिलावैं
देश की ये उन्नति करैं गे । दुखियों के आंसू पोंछैं गे

मनुष्य को ईश्वर का अनुभव

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन् त्सहसा सहः ।
महत् तद् अस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजद्
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥१०॥

अपने बल से बृत्र की सेना बलयुत गार ।
जग में सुख धन धान्य को भेजै वृष्टि द्वार ॥
प्रभु का बल अति महत है करत वृत्र की हार ।
अरु लावै शुभ राज्य में जो है यह संसार ॥
हमरे निर्बल कारणे मुशकिल हैं सब ठौर ।
उन से लड़ने में हमैं होत तजरवा गौर ॥
जब सहाय ईश्वर करै निखिल विघ्न नश जांहि ।
मन में हो उत्साह अरु सिद्धि कार्य के मांहि ॥

इस जग में बहु वस्तु भरे हैं । जो श्रम से सब होत परे हैं
श्रम विन वह उपलब्ध न होवैं । श्रम नहि जामें विघ्न न होवैं
देखो श्रम पढने में होता । हाथ मुखों से बालक घोता
जो सोया तो पाठ न आया । घोख घोख के स्वास्थ्य नमाया
पढ पढ कर पिंजर तनु कीना । प्रायः चक्षु ज्योति विहीना
जब विवाह की आवै विरिया । मनुष को दास वनावै तिरिया
तव कुटुंब के धंधे आवैं । अरु जविन सुख को खाजावैं
गृह पालन कर्तव्य महा है । सो तुलसी ने सत्य कहा है

हाले फूले हम फिरत हैं होत हमारा व्याव।
तुलसी गाय वजाय के देत काठ में पांव॥

गृहस्थ की चिन्ता अति भारी। जो व्यापै हैं नर अरु नारी
चिन्ता ने मुदिता है नाशी। एक कवि ने इस विध भाषी

चिन्ता ज्वाल शरीर वन दावानल लग जाय।
प्रघट धुंवा नहि देखिये उर अन्दर धुंधवाय॥
उर अन्दर धुंधवाय जरै ज्यों कांच की भट्टी।
जर गयो लोहू मांस रह गई हाड की ठट्टी॥
कह गिरधर कवि राय सुनो हो मेरे मिन्ता।
वे नर कैसे जिंए जिने व्यापै है चिन्ता॥

वृद्धावस्था अति दुख दाई। इस विध शंकर ने वतलाई

यावद् वित्तोपार्जनशक्तः तावद् गृह-परिवारे रक्तः।
पश्चाज् जरजरभूते देहे वार्त्ता कोऽपि न पृच्छति गेहे॥
अंगं गलितं पलितं मुंडं दशन-विहीनं जातं तुंडम्।
वृद्धो याति गृहित्वा दंडं तदपि न मुंचत्याशा पिंडम्॥

इस का भाव अर्थ यह जानो। पीरी की मुशकिल हैं मानो
जव तक लावैं घर में पैसा। तव तक आदर फिर नहि वैसा
दुर वल देह दान्त झड जावैं। खानें में वहु कष्ट उठावैं
यह सव संकट ईश्वर काटैं। सुख से धर्म करण पथ पाटैं
धर्म करण से बुद्धिः जागै। द्वेष भाव जन मन से त्यागै
सर्व प्रजा मित्र वन जावै। इन्द्र राज्य में वह सुख पावै
जो जागे हैं वह मानैं गे। वेद धर्म अरु सुख पावैं गे

छोडो सारे कर्म जो निषिद्ध हैं वेद में।
करो वेद का धर्म जो सव सुख का मूल है॥

ईश्वर का भय

इमे चित् तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।
यद् इन्द्र वज्रिन् ओजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीर्
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥११॥

जब ईश्वर ने कोप कर हनो विघ्न--कर वृत्र ।
तब भू द्यौ भय से कपे प्रजा सहित सर्वत्र ॥
इन्द्र तेज को सह सकें चाहे हो बलवान ।
सब महान के साथ जब प्रादुर हों भगवान ॥
अपने बल से राखते अपना राज सदैव ।
सृष्टि बिच प्रभु अर्चना देखत परे इहैव ॥
सो प्रभु से डर कर चलो सब जगके व्यवहार ।
करो श्रेष्ठ जो सर्व को करके खूब विचार ॥

जो जन विघ्न सृष्टि में करते । तिन का प्रभु वैभव हैं हरते
वे हि वृत्र अरु शत्रु कहाते । प्रजा हानि करते कर घाते
जहां कहीं घातिक बहुतेरे । वहां रोग अरु दुःख घनेरे
आर्य जाति हरि आज्ञा कारी । यातें आर्य वर्त्त उपकारी
लक्ष्मी ने यहां वास किया है । भूमि वारि के लाभ दिया है
उपज बहुत है आद्य वस्तु की । जो वर्धक है जीव जन्तु की
वैदिक धर्मी पशु नहि मारैं । उन से सुख के काम निकारैं
मिहनत करके रोटी खावें । पर धन में नहि चित्त लगावैं
इस को ईश्वर भय कहते हैं । सभ्य लोग इस पर चलते हैं
इस से देश में उन्नति भारी । प्रजा सुखी नित होवै सारी
धन बल विद्या संतति बाढै । वैभव भानु देश में चाढै
नीच कर्म आपहि से जावैं । जो अब हमैं असभ्य बनावैं
यदि इच्छा है जागो भाई । पूर्वों की भजो प्रभुताई

ईश्वर को किसी का भय नहि

न वेपसा न तन्यता इन्द्रं वृत्रो विवीभयत्।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्र-भृष्टिर् आयत
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥१२॥

दुष्टों के बल दर्प से तनिक न डरपै इन्द्र।
अगणित धार के वज्र से नाशै आत्मा क्षुद्र॥
पक्षपात नहि करत है देखत जीव के कर्म।
फल दे ठीक विचार के उन के धर्म अधर्म॥
इन्द्र राज में न्याय है सब जीवों से प्यार।
करत दया ईशान है वाह न कभी विसार॥

पर धन हर कर जो जीते हैं। वो हि वृत्र वैरी होते हैं
जग में त्रास उपद्रव करते। श्रमहि छांड पर धन जन हरते
ईश्वर को प्रायः नहि मानैं। करैं कुकर्म क्रूरता ठानैं
लूट मार व्यभिचार नृशंसा। मांसाशन की करैं प्रशंसा
यातें लोग होत अन्यायी। विद्या संपत देत गँवायी
पराधीन हो काल विताते। लाज छोड कर गाल बजाते
पर जब यह अति करने लगते। तब इन में प्रभु वज्र भेजते
वह इनको सत पथ पर राखै। जो जस करै सो तस फल चाखै
सहस्र नाम अनन्त का जानो। भृष्टि धार आयस दृढ मानो
वज्र वरजने का आयुध है। ताका अर्थ उपाय अरु सुध है
सो सुध लेवै जो जस होवै। वह काटै जो भू में बोवै
सो सब चलो धर्म पर भाई। जासे प्रभु तुम से न रिसाई
और न दुख तुम को ह्यां होवै। अटल सुख पर लोक में होवैं
इन्द्र राज्य की उत्तम ताई। यही वेद ने हमैं बताई

ईश्वर बल महत्व

यद् वृतं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः। अहिम् इन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवो अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥१२॥

इस संसार असीम में ईश्वर बल सर्वत्र।
राक्षस दल बल हनन को उद्यत तीक्षण शस्त्र ॥
भू द्यौ के सब ठौर में विद्यमान करतार।
वृत्र शत्रु को मार कर सुखी करै संसार ॥

जित देखो उत उपज नई है। वृक्ष जन्तु की सृष्टि भई है
इन को ईश्वर ही रचता है। यातें उस का बल दिखता है
रचना ईश्वर की सिद्धिः है। अन्वेषण विद्या वृद्धिः है
विद्या ईश्वर बल बतलाती। जग में बाधक नाश दिखाती
जो अयोग्य वह नीचे जाता। योग्य पदार्थ वृद्धि को पाता
योग्य अयोग्य विद्या से होता। विद्या का है ईश्वर होता
श्रम सुशील ईश्वर अनुकंपा। विद्वत् संघ मातु पितु धनपा
ये विद्या के साधन हैंगे। इनकी रक्षा प्रभु हि करैंगे

जगदीश्वर का मान कबहु न मन में न्यून हो।
जब लग घट में प्राण एक ब्रह्म सिमरो सदा ॥
एक हि साधैं सब सधैं सब साधैं सब जाय।
जो गह सेवैं मूल कों फूले फलै अघाय ॥
ब्रह्म जगत का मूल है अरु जीवन आधार।
वाको पूजन सर्वदा करो बुद्धि अनुसार ॥
करो बुद्धि अनुसार कर्म के पूर्व सिमरलो।
सब से बरतो न्याय दीन पर दया को करलो ॥

त्यागो मदिरा मांस और कर नित प्रति धर्म ।
प्रातः वांचो वेद जो वरणै एक हि ब्रह्म ॥

पाप नाश वेला प्रलय

अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच् च रेजते ।
त्वष्टाचित् तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भिया
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥१४॥

सिंह नाद जब जगत में तेरा हो भगवान ।
पाप नाश को प्रलय में ता सुख होय महान ॥
तब जड जंगम कांपते क्या होवै परिणाम ।
तुझ से कोइ न छिपा है जो कीनै हम काम ॥
ईश्वर देता कर्म फल दया से करता न्याय ।
दोष समस्त विनाश कर धर्म मार्ग दिखलाय ॥
इस विध पाप हि नष्ट कर जगको शोधित इन्द्र ।
जीव सुखी कर राज्य नु स्थापित विद्या केन्द्र ॥

अभिष्टन सिंह नाद बताया । सो हो ईश्वर कोप कहाया
जब हि पाप की वृद्धिः होवै । तब हि कोप ईश्वर को होवै
फिर सब जगत भीत होजावै । और धर्म पथ पर आ जावै
त्वष्टाचित जन अर्थ यहां पै । वह भी डर से थर थर कांपै
अथवा इन्द्र हि जगत बनाता । जिस से त्वष्टा वह कहलाता
त्वष्टा नाम जगत का करता । सो ईश्वर वा इन्द्र कहाता
शब्द अर्थ है रंदा करता । सो वढई तिरखान हि होता
इन्द्र विश्व का घडने वाला । जीव कर्म का करने वाला
सो यहां अर्थ जीव हि घटता । इन्द्र विशेषण का भी होता

कोइ शब्द बहु अर्थ बतावैं । उने विशेषण पृथक बनावैं
चित् त्वष्टा के साथ लगा है । जैसे केचित् में होता है
त्वष्टा चित् समान जन होते । पाप दण्ड से बहुत हि रोते
चित बिन त्वष्टा इन्द्र विशेषण । सो भी अर्थ करत प्रति पादन
जो घडता वह नाश हि करता । इस से जगत कोप से डरता
इस विध कोई भेद न पाते । दोनों अर्थ समीची होते
ईश्वर आज्ञा का उल्लंघन । वस्तुतः हैं पाप के लक्षण
पाप नष्ट कर राज जमाता । भगवत जग में न्याय हि करता
स्थूल दृष्टि ईश्वर नहि देखै । सो जन धर्म विधान न सीखै

ईश्वर अगम्य है

नहि नु यात् अधीमसि इन्द्रं को वीर्या पर ।
तस्मिन् नृम्णम् उत क्रतुं देवा ओजांसि संदधुर्
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥ १५ ॥

नहि जानत हम इन्द्र को उसका वीर्य अनन्त ।
किस की इतनी शक्ति है जो जानै भगवन्त ॥
उस अलक्ष्य जगदीश से विद्वज्जन की आस ।
धर्म कर्म धन बल हि का उनका वह विन्यास ॥
हमरे बल अरु वित्त का जगदीश्वर गढ सत्य ।
उस के दल से बली हैं इच्छा से कृत कृत्य ॥
हम इन्द्र हि से मागते हो तव राज्य महान ।
जासे लोक हि सुख मिलै अरु हो तेरा ज्ञान ॥

निगह कुन बरीं गुंबजे जीनहार । कि शकफश बुवद वे सुतूं उस्तवार
रात्रि को जो दिखैं है तारे । वह अगणित लोक हि हैं सारे
उन का पारा वार नहीं है । उन सबका करता प्रभु ही है
रच के उन को वहीं विराजै । शासन न्याय युक्त हि साजै

परमात्मा अलक्ष्य है जग में। जैसे जीव अदृष्ट अंग में
हम अपने को आपहि जानैं। अन्य जीव को नहि पहिचानैं
पर में चेष्टा से अनुमानैं। सो कभी झूठ कोउ न मानैं
इसी प्रकार जगत का स्वामी। रहै विश्व में अंतर यामी
होने में संदेह नहीं है। आंखों से नहि दिखत कहीं है
भला जीव को किसने देखा। जासु देह में रूप न रेखा
जब रण में मारे जाते हैं। तब न जीव जाते पाते हैं
मरे जिये को सब कोउ जानै। पर जीव हि को नहि पहिचानै
जीव अलक्ष्य अलक्ष्य का सूनु। जीव रश्मि ईश्वर है भानुः
यद्यपि ईश्वर अलख बताया। ऋषि मुनि ने विश्वास जमाया
उसहि अलख अगोचर प्रभु में। जो व्यापक है जीव जन्तु में
उस के अर्थ कर्म सब करैं। उस की इच्छा पर ही चलैं
उस की इच्छा वेद ने गाई। जिस से द्यौतित मन हो जाई
फिर हों पूर्ण मनुष की आशा। कट जावैं उस के यम पाशा
ईश्वर राज्य सुखों का घर है। जित हो उत सब जनहि अमर है
वेद हि नीति शास्त्र उसका है। जासु प्रचार सुख सब का है

वैदिक कर्म अनुष्ठान

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियम् अत्नत।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथा इन्द्र उक्था समग्मत
अर्चन् अनु स्वराज्यम् ॥१६॥

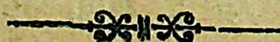
हिंसा रहित मनुष्य जो अरु जो ज्ञाना पन्न।
जो जेठा है आयु में अरु जो करै प्रसन्न ॥
उन ने जैसी बुद्धि से आराधा है इन्द्र।
तैसी बुद्धि नम्र से ध्यावो उसे अतन्द्र ॥

छोटे वढे मनुष्य सब वेद मंत्र से इन्द्र।
सिमरैं मन में भक्ति से जो चेतन भव केन्द्र॥
अपने शुभ आचार से धर्म महत्व बताव।
यातें औरों की रुचिः धर्म के प्रति वढाव॥

जब धार्मिक सब मनुजहों तवहि इन्द्रको राज।
जग में आवत मित्र सो करो धर्म के काज॥
करो धर्म के काज जगत में सुख फैलावो।
विद्या पढो पढाव काम कर रोटि कमावो॥
छांड बुरों का संग मांस मदिरा त्यागो सब।
चोरी जारी धूत तजो दुर्वचन जाय जब॥

अथर्वा जो हिंसा का त्यागी। अथवा वह जो ज्ञान का भागी
मनुष्पिता सब जन का भरता। मनन शील पालन का करता
दध्यङ जो शुभ काम वताता। ये सब ईश्वर के हैं ध्याता
इन के कर्म सदृश अरु बुद्धिः। करै मनुष को प्रापत शुद्धिः
वेद मंत्र से ईश्वर ध्यावैं। मन विकसै अरु विद्या पावैं
विद्या वान सुकर्मी होते। जीवन को न पाप में खोते
ऐसे सच्ची प्रजा कहाते। ईश्वर की अरु बोध वढाते
इन्द्र राज्य प्रख्यापित करते। सकल दुःख लोगों का हरते

मैत्री मुदिता उपरतिः करुणा पोषण धाम।
जीव मात्र को दिलाते यही धर्म के काम॥
यही धर्म के काम किए पूर्वों ने हमरे।
जिन से धार्मिक सभ्य भए जन जग में सवरे॥
विद्या खेती शिल्प सिखा करी प्रजा कर्त्री।
दुष्ट कर्म कर दूर कराई सब में मैत्री॥



संक्षेप

वैदिक मत संक्षेप सुनो मित्र एकाग्र हो।
जासु दूर विक्षेप मन से हो शुभ के लिये॥

वेद धर्म उत्तम कैसा है। जग में केवल वह सच्चा है
एक ब्रह्म अर्चन उस में है। वेद मंत्र चिन्तन मन में है
ज्ञान सुकर्म मुक्ति साधन हैं। ऐहिक वैभव के कारण हैं
ईश्वर का सीधा पूजन है। उस को हृदय बीच खोजन है
पैगंबर अवतार का आना। वेद ने नहि आवश्यक माना
यातें वेद धर्म सब का है। माननीय सब ठौर सदा है
जो बोवै वो हि जन काटै। नाहि कर्म फल बाढ घाटै
उद्यम कर रोटी खाना है। मैत्री सब जन से करना है

वैदिक शुभ आचार से रहै स्वर्ग का राज।
प्राणि मात्र को सुख मिलै यह है आर्य समाज॥

मतों का इतिहास

आदि काल में एक हि मत था। पृथिवी पर मत अन्य नहीं था
कहते हैं कशमीर के उत्तर। जैहू सैहूं के स्रोतः पर
समर कंद के देश पास था। आर्य जाति का प्रथम वास था
जस जस बढे वहां से निकरे। कोई आय हिन्द में ठहिरे
हिन्दु अफगानी ईरानी। ग्रीक स्लेव जरमन लाटीनी
इंगलिश फ्रैंच अमरीका वासी। सब हैं आर्य संततिः खासी
अब भी इन का ईश वही है। जाह वेद द्यु पितर कहै है
ओं इंगलिश में ओ हो जाता। ईश्वर पूर्व सदा है आता

सब की है ऋगवेद आदि बाइबिल मित्र गण।
मिटैं धर्म के भेद जब उसका परचार हो॥

पारसी मत

आर्यन से ईरान बना है। इन ने अग्नि देव माना है
जंघू भी कट में पिहने हैं। गौ को अवधनीय माने हैं
जार दस्त जरिता होता है। सो वह जो स्तुति करता है
उन ने द्वैत इने सिखलाया। हरमुज अर्यमान बतलाया
हरमुज नेकी का है करता। अर्यमान शैतान कहाता
ये दोनो वे सम कर जानैं। वेद का एक ब्रह्म नहि मानैं
क्यों हम से किया द्रोह न जानैं। देव शब्द से राक्षस मानैं
अब नाटक में इन्द्र बनावैं। लाल देव अरु परी नचावैं

यहूदी मत

मिसर देश में वेद धर्म था। मूसा जानत जासु मर्म था
फिर मिडियन का एक पुजारी। मिला तूर पर अग्नि जारी
जार दस्त का धर्म बताया। मूसा को जामातृ बनाया

ईसाई मत

फिर ईसा ने उसे सुधारा। अग्नि होत्र को दूर निकारा
उस पर अपनी छाप जमाई। यातें ज्यूज भए ईसाई
फिर कुछ चेलों को यह भाया। ईसा को अवतार बनाया

मुहम्मदी मत

जिन ने यह सिद्धान्त न माना। उन का कूफा भया ठिकाना
वहां मुहम्मद बंज को जाते। उन के शास्त्रार्थ को सुनते
उन ने अर्बों को सिखलाया। जो नेसटोरियन ने बतलाया
उस पर छाप लगाई अपनी। और किसी की तनक न सुननी
कुछ मूसाई कुछ ईसाई। शिक्षा दीन मुहम्मद भाई
कुरबानी मूसा से लीनी। और पैरवी ईसा कीनी

—•—

वेद मत की सर्वतंत्रता

इस विध वैदिक धर्म पुराना । सबने इस को ही है मांना
ब्रह्म एक को ये नहि मानैं । खुदा और शैतान वखानैं
जब सिखलावैं यही सुनावैं । सो शैतान हि बड़ा जनावैं
उस ही का जग पर कवज़ा है । सो सब जानैं सुख साधन है
इन की शिक्षा से जन करते । जो डेविल के काम कहाते
जहां कहीं यह शिक्षा फैली । पूर्व विभूति नाश ने गहली
काबुल फ़ारिस साग़डियाना । लिडिया ग्रीस मिसर पलिताना
रूम आदि देश को माना । आढ्य जिनों ने हाल वखाना
फिर इस शिक्षा को विद्या ने । झुठलाया तब तो लोगों ने
विद्या पढ अन्वेषण कीना । यातें पुनः हुए परवीना
सो वृद्धिः का कारण विद्या । जो नाशत है सर्व अविद्या
शुभ विद्या का वेद खजाना । इस का साक्षी हिन्द पुराना
अन्य मतों ने वेद से थोडा । लेकर वहुत स्वार्थ से जोडा
अपनी अपनी छाप लगाई । फोड़ दिए भाई से भाई
सर्व तंत्र से स्वार्थ निकाला । और कहा यह धर्म निराला
कोई नूतन बात न उन में । दुनिया दारी उन के जन में
कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा । भान मती ने कुनवा जोड़ा
वेद धर्म में सब को सुख है । फतूहात खूंरेजी नहि है
हे ईश्वर दृष्टा जीवों का । कोमल कर दिल सब लोगों का
जिस से फिर मानैं वेदों को । छोड़ दें सब वाह्य मतों को

॥ ओशम् ॥

॥ इति ॥



॥ भजन ॥



मन बौरा तू चेत सवेरा विलंब किये नहि अच्छा है ॥
यह संसार असार है भाई जा में तू भरमाना है ॥
जो २ वस्तु तुझे प्रिय लगती सो माया गुण माना है ॥
बाल अवस्था में प्रिय मोदक रूप युवा में प्यारा है ॥
वृद्ध भये पर यह सब अप्रिय पिण्ड थकित रह जाता है ॥
इस शरीर पर मोहित होकर क्यों निज रूप भुलाना है ॥
नहि तु बाल युवा नहि बूढा नहि चांदी नहि सोना है ॥
यह सब रूप विकृत पृथिवी के फिर क्यों माटी होता है ॥
मान कही इस भोग को छोडो यह तुझ ढिंग नहि रहना है ॥
यदि बुद्धि है तो तू भाई वेग संभल अब वेला है ॥
तू प्रिय बालक है ईश्वर का जो पृथिवी का स्रष्टा है ॥
तेरे हि अर्थ भोग सब बनते क्यों तृष्णा से मरता है ॥
कर उपलब्ध ज्ञान शंकर का जो शुभ आशा भरता है ॥
साधु संग अरु विद्या ध्ययना पोषणार्थ क्रिया करना है ॥
व्यापक ब्रह्म अखंड ज्ञानमय ता में सुख से फिरना है ॥
ज्ञानसे पावे सब कोई हरिको विना ज्ञान नहि पाता है ॥
वेद शास्त्र सब यही कहत हैं ब्रह्म धाम तुझे जाना है ॥
सो करले तूं अब सामग्री वाट सुगम जा से होना है ॥
ओं शब्द तु मन के भीतर जपता रह यह अच्छा है ॥
जब मन शुद्ध अचंचल होवे तब तुझ को प्रभु मिलना है ॥



अ

अनीकं...बल
अग्नेः...अग्निकी
आप्राद्...व्यापक है, पृ भरना लङ्-आपूरा२
अन्तरिक्षं...सूर्य और भूमि के वीच का आकाश
आत्मा...भीतर रहने वाला जीव
अर्यः...भला लोग (ऋ जाना)
अभ्येति...जाताहै(इ जाना) अभि उपसर्ग
अस्थुः...थे हैं (लिट)
अयुक्तः...जोता लगता (लुट) युज्
अभिचक्षे...देखने को
अनन्तः...वेहद
अन्यत...दूसरा
अस्य...उस का
अघा...अब
अंहसः...गुनाहसे पापसे
अवद्यात्...बुराई से
अदितिः...आकाश
अभिश्रीः...सरताज
सुन्दरता

अग्निः...ईश्वर
आविवेश...पूरी तरह व्याप्त है
अस्तु...होवै
अधत्त...धारन किया लिया
अनुपश्यतः...देखने वाले को
अकायं...विदेह, वगैर वदन के
अव्रण...काटने के ना काबिल
अस्नाविरः...विना नाडी नस के
अपापविद्धं...पवित्र
अंधं...अंधेरा,तारी की
असंभूतिं...परमाणु को
अन्यत्...दूसरा अलहिदा अलग
असंभवात्...परमाणुवों से प्रकृति से
अनिल...हवा प्राण
अमृतं...अमर
अथ...और
अग्ने...हे परमेश्वर
अस्मान्...हमको
अस्मत्...हम से

अपहितं...ढकाहै
आदित्ये...सूरजमें
असौ...वह,यह
अहं...मैं
अनाप्तः...कोई नहि जानता
अपरीताः...अगम्य दूसरे नहि पहुंचते
अंगिरोभिः..जाने वाले से प्रकाशों से
अश्नन्त...पाते हैं
अशस्तीः...[illegible]
अजस्रं...सदा
अपरिह्वृताः...[illegible]
अविंदत...दि[illegible]ता है
अवसृज...[illegible]सा
अभिक्रम्य...सामनेआकर
अन्धसः...अन्न
अद्रिवो...मेघ युक्त
अस्थिरन्...हैं
अर्चन्...स्थापित करनेको
अधिमसि...जानते हैं
अभिष्टन...[illegible]हनाद

आ

आयोः..विचारवान के
अजनयत्...पैदा किए

आरीः…जानेवाले वार २ हिंसा करने वाले
अन्तः…में, भीतर
आयुः…उमर
आरम्य…आश्रय लेकर
आपृण…पूरण कर
आवास्यं…व्याप्त
आवृताः…घिरा हुआ, रुका हुआ
आत्महनः…मक्कार
आप्नुवन्…पाते हैं
आत्मनि…अपने में
आत्मानं…अपने को
आपः…जल कुदरत
आत्मा…अपने जीव
आहुः…कहते हैं

इ

इत्…हि भी
इतो…इहां से
इदं…यह
इमाः इमे…ये
इलत…पूजते हैं
इषः…अन्न
इष्टये…याग के लिए
इन्द्रस्य…इन्द्र का
इन्द्रियं…इवास इन्द्र के अर्थ
इव…मानिन्द जैसा
इयं…यह
इन्द्र…परमेश्वर
इव…मानो, हि, जैसे
इति…ऐसा इतना
इदं…यह
इत्था…इस प्रकार से

ई

ईश…ईश्वर

उ

उदुथगात्…है इ जाना

लुङ

उषसं…प्रातःकाल के प्रकाश को
उपस्थे…ऊपर
उदिता…ऊगता
उत…और
उपासते…पूजते हैं

ऊ

ऊर्जः अन्न का
ऊषसा…दिन
उषः…उषा के प्रातः के
ऊरुं…बड़ा
उ…हि
ऊती…रक्षा के लिये

ऋ

ऋजसानं…स्तुति करने जोग
ऋग्मिभिः..पूजनीयों से
ऋग्मी…पूजनीय
ऋम्वा…बड़ा

ए

एनं…इस को
एकं…एक
एनत्…इसको यह
एजति…हिलता है
एव…हि समान भी.
एकत्वं…एकता सबएकसे
एनः…पाप
एवैः…जाने वालों से

ऐ

ऐतग्वा…जाने वाला

ओ

ओजसा…बल से
अग्निं…ईश्वर को
-ःआग का ईश्वर का
-े हे ईश्वर
-ौ आग में

अमृतत्वं...मुक्ति, नहि मरना
अपां..जलों का अपःजल
अपावृतं...रोक दूर की
अथ...और फिर
अन्वसत...होता है
अस्मै...उस के लिए
अध्वरे..यज्ञ में
अकारि...की बनाई गई
अन्यः...और दूसरा
अन्यात्... और से
अस्य...इस का
आवासृजः...बहाए
असुर्याः...अंधेरे
अंधेन...अंधेरेसे
अभिगच्छन्ति..जाते हैं
अनेजत्...नहि हिलता

औ

औषधीः...जड़ी बूटी वनस्पती

क

कृष्ण...काला
को...कौन
कविः...जाननेवाला
काव्यानि...स्तुतियां (कविके काम)
कव्यता...स्तुति
केतुः...जनानेवाला, शिनतान्
कामं...इच्छाको
केवलं...सिर्फ
किंच...कुछ
कस्य...किसी का
के...कौन वह
क्रतो...हे करने वाले
क्षिवे...स्वर्ग
कृतं...कर्म.किया हुआ
कृण्वत...करतेहैं

ग

गातुं..मार्ग को जानेको
गोपाः...पालनेवाला
गिर्वणः...स्तुति योग्य
गिरः...स्तुति वाणी
गृधः...चाह

च

चक्षसा...तेज से
च...और
चकर्तिथ..तूने किए काटे
चित्रं..अजीव
चक्षुः...आंख
चकार...किया

छ

छुकं...देखोशुकं
छाश्वतीभ्यः...देखो शा. श्वतीभ्यः

ज

जानिता...पैदाकरने वाला
जातस्य...पैदा हुएका
जायमानस्य...पैदाहोने वाले को
ज्योतिः...रोशनी
जगत्यां...चलने वाले में
जगत...संसार
जनाः...आदमी
जातो...है
जायमानः...प्रगट होने वाला
जगतः...संसार का
जुहुराणं...कुटिल लुभा ने वाला
जिग्युभिः.जीतनेवालोंसे
जीवधन्याःजीवों से भरी
जामिभिः...बन्धुवों से
जाहृषाणेन...बडेक्रोधसे

त

तनयाय...लड़के को
तनय...लड़का
तवसे...बढे के लिए
ते तव...तेरा वे

त्वा…तुझ को
त्वत्…तुझ से, तेरे से
तत्…वह तद्
त्वं…तू
तं…उसे
तेन…इस लिए उस से
त्यक्तेन…त्याग से
तिष्ठत्…ठिहरता हुआ
तस्मिन्…उस में
तु…लेकिन
ततः… तब
ततो…उससे
तत् तन्…वह
तनुते.तानतीहै फैलातीहै
तव,..तेरा
तं…उसको
तत्र…तब, वहां
तमः…अंधियारा
ते…वे
तरिद्द्वेषाः…शत्रु का जीत ने वाला
त्वक्षसा…बलसे

द

देवाः…विद्वान, मरुतः कुदरतीचीजें इन्द्रियां
द्रविणोदा…धन देने वाले को या देने वाला
द्याम्…आसमान को
द्यावा…आसमान
द्रविणसः…धन का
दीर्घं…बडा
दुर्वर…बे रोक
दधिषे…धारन करताहै
दधाति…रखता है
देवानां…देवताओं का, कुदरती चीजों का
द्यावा पृथिवी..आकाश धरती
तस्थुषः अचल पदार्थ को
देवीं..चमकने वाली को
देवयन्तः…देवता को चाहने वाले
दिवं…आकाश
दिवि…आकाश में
देवत्वं…देवतापन
द्योः…आसमान का
द्यौः…आकाश, सूर्य
दिवा…दिन को
देव…हे ईश्वर
दिवः…सूरज का
दुधानाः वरसाना

ध

धिषणा…बुद्धि
धापयेते…देते हैं
धारयन्…स्वीकार करते हैं, मानते हैं
धाम…घर
धनं…दौलत
धावतः…दौडता हुआ
धीराणां…बुद्धिमानों का

न

निवदा…वेद
नक्तं…रात्रि
नु…अब हि
नःनो…हम को, हमारा
निम्ना…नीचे स्थल
न..नहि मानिंद समान
नमसा…नम्रता से
नाम..निश्चय करके हि यानी मायनी
नहि…नहीं
नेमे…नीची है
निवृतः…रोका हुआ
नमस्यन्त…नमस्कार करते हुए, नम्र
नि…विलकुल खूब
नक्तं…रातको
नय…ले चल
नमः उक्तिं…नमस्कार का बोलना
नोः शशाः विलकुल हवा दिया

निः जघन्थ…मारा
नियंसते…नहि रुकता
नृम्णं…मनुष्यों को झि ताने वाला
न…जैसे मिसल
नरः …मनुष्य (नृ)

प

पुत्रः…पालने वाला
पुरुवार पुष्टिः…ईश्वर
पुरु..वहुत वार पसन्द- करना, मांगना
पुष्टि वृद्धि तरक्की- जिससे वहुत वृद्धि- मांगते हैं
पुरा…पहिले पुराना
प्रयंसत्…देवै
पावक..पवित्र करने वाला
प्रवणे…नीचेको
पर्वते…पहाड़ पर-वृत्र में मेघ में, मेघ को
पनीयसे…वहुत स्तुति के योग, के, लिए
पुरुष्टत.वहुत स्तुति जोग
प्रभूयसः.वडा धन वाला
पर्वशः…टुकडे २
मित्रस्य…सूर्य की

पश्चात्…पीछे
प्रति…वास्ते
पाजः…वल किरण
पिपृत…वचा
पृथिवी…जमीन
प्रत्नथा…पुराणे के सदृश प्रत्न पुराण थाल इव मानिन्द
पर्यगात्..पाता है
परिभूः-सव ठौर है
प्रविशन्ति..जाते हैं
पात्रेण..वरतनसे परदेसे
पुरुषः…जीव
पृथिव्याः…संसार का
प्रेत्य…मर कर
पूर्वं…आगे पहिले
पृष्ठ…ऊपर पीठ
परि…सव तरफ
पृथिव्यां…जमीनपर
पातु…वचावै
पूर्वया…पहिलेकी
प्रजाः…लोग मखलूकात
प्रथमं…पहिला
पन्थासः…राह
पौंस्येभिः…वल से
पारिषत्…पार करताहै
परिका..व्याप्त

ब

बुध्नः…मूल
बृहते…वडे के लिए
बृहत्…वढ़ारये
बृहती…वढ़ी
ब्रह्मवाहः…वेद मंत्रों से प्राप्त होता है
बिभीभयत्…डराया

भ

भरतं…देने वालेको
भवतः…पैदा हुए का
भूरेः भूरी वहुत का
भर…मैं करताहूं
भीमाय…भयानकके लिए
भुजीयाः…भोग
भूतानि…प्रजा
भूतषु…प्रजा में
भद्राय…अच्छे के लिए
भद्रं…अच्छा, नेकी
भुवनानां…लोकों का
भूतानि…प्रजा मखलूक
भूयः…अधिक वहुत
भस्मान्तं…आखिर भष्मी होने वाला

भूयिष्ठां...बहुतवार वार
भरेषु...लड़ाई में
भवतु...होवे
भृष्टिः...धार

म

मनूनां...लोगों का
मातरिश्वा...ईश्वर
मातरि...आसमान में श्वन् रहने वाला
मन्म...अभिलाषा इच्छा
मंहिष्ठाय...देने वाले के लिए
मतिं...स्तुतिको
मघवन्...धनवान, इन्द्र
महा...बड़ा
मा...मत नहि
महत्वं...बड़ाई
मध्या...बीच में
मा महन्ताम्...महान हो
मघवानः...धकल मन्द
मघवा...बुद्धि इन्द्र
मित्रं...दोस्त
सूर्य-स्य सूर्य का
मोहः...लालसा अत्यन्त स्नेह
मनीषी...विचार वान
मुखं...चहरा
मरुत्वान...मुक्त पुरुष साहित फरिश्तोंकेसाथ
मदे...खुशी में
मायिनं...छली को
मायया...बल से
मन्यवे...कोप से
मंदिने पूजनीय

य

यज्ञ...पूजा
यस्य...जिसका
यत्...जब जो
ये...जो
यः...जो
यस्मिन्...जिसमें
याथातथ्यत..अच्छी
योषां...स्त्री को
यत्र...जहां
युगानि...याग,यज्ञ
यन्ति...जाते हैं
यतते...यत्न करता है इंतजाम करता है
युयोधि...जुदा कर
यामो...गति
यंति...जाते हैं
यमति...हटाता है

र

रोदस्योः...जमीन आसमान का
रुक्मः...सुन्दर
रायः...धन का
रक्षमानासः..पालनेवाले
रयीनां...धन का
रासते...देता है
रेवत्..धन वाले के लिए
राधः...धन
रोचमानां..सुहावनीको
रात्री...रात
रूपं...प्रकाश
रुशद्...लाल
राजा..मालिक हाकिम
रिषः...हिंसासे
रायः...धन
रताः...लगे हैं
राये...धन के लिये
रेतवः...किरणे
रोदसी.जमीन आसमान

व

विशां...प्रजा का
विशः...लोग, प्रजा
वर्पं...रूप को
विभाति...चमकताहै

वीरवतीं···वीरपुत्रादि-
सहित
वृधानःवढता प्रघट होता
विभाहि..तू दिखता है
विश्वायु···सर्व व्यापक
विश्व···सब
वज्र···हतियार
वयं···हम
वचः···स्तुति
वीर्य···बल
वज्रिन···हे वज्र वाले
वज्रेण···वज्र से
वाह्यतः···वाहर
विच कितसति···
प्रना नहि करता है
वरुणस्य···चन्द्र की
वितन्वते..करते हे(यज्ञ)
तन् फैलाना
विततं..फैला हुआ किरण
वासः···पसारा चद्दर
वैश्वानरस्य...ईश्वर का
जगत के हर वर की
विश्व···जगत
विचष्टे···व्याप्त है
विश्वा···विश्वानि.सब
विवस्वता...रहने वाले
व्यदधात्.वनाये वनाता है

वायुः···हवा
विश्वानि···सब
वयुनानि···धन
विद्वान्···जानने वाला
विधेम···करैं
वृषा..वरसाने वालादात,
वृष्ण्येभिः···मरुतों से
मेघों से
वृत्रहा..असुर का मार
ने वाला
वृषन्तमः···वडा दाता
वृजने···घर में
वर्धनं···स्तोत्र
वज्रिन..हेवज्रधारी बली
वृत्रं..असुरको, रोकं को
वेपते···कांपते हैं
वेपसा···कांपने से
व्राधतः···मारता है
वाजं···अन्न

श

शिशुं···पुत्र को
श्रवसे···अन्न के लिए
शवसे···वल के लिए
श्नथिता···मारने वाला
शुभ्र···अच्छा
शोकः···अफसोस दुःख

शुक्रं···शुद्ध पवित्र
शाश्वतीभ्यः···सदा से
शुश्रुम···सुना था
शरीर···देह
शुष्मः..असुरों का सुखा
ने वाला, नाशक
शवसा···वल से
शुष्णं..सुखाने वाले को
शविष्ठ···वडा वली
शवः···बल

स

साधन्···करते हैं
सुभ्र···वहुत
स्वर्वित्..स्वर्गकाशालि रू
स्वः···स्वर्ग
समीची···मिलते साथ
संगमनः···मिलने वाला
साधनः···वसीला वना
ने वाला
सदनं···गृह
सतः···सर्व व्यापक के
सनरस्य···अचलका,
स्थावर का
समिधा···सोचने से—
जला ने से
सत्यशुष्माय...सच्चे
वल के लिए

संवना…यज्ञ
समशीत…सोया(लङ्)
सघत-प्राप्त होती पहुंचती
स्मसि…स्मः हम हैं
सर्वाणि…सब
स्वयंभू;…आपहि आप खुद ब खुद
समाभ्यः..सालों से
संभूत्यां…सृष्टि दुनियां
संभवात्…सृष्टि से
स्मर…याद कर
सुपथा…अच्छे मार्ग से
सत्यस्य…ईश्वर का
समोकाः…उसी लोक में
संराट्…बादशाह
सतीनसत्वा…सुख दाता जल देने वाला
स्वेभिः…अपने लखत जिगर
सखिभिः..मरुतोंके साथ
सासहिः…शत्रुवों को हराने वाला
सनीडेभिःमरुतों के साथ
सनत्…देता है
सव्येन…बाएं हाथ से
सनिता…देने वाला
सनुयाम…देवैं
सोम…सृष्टि
साकं…मिलकर इकट्ठे
सहः…बल

ह

हरितः…लेजाने वाला किरण इन्द्र वा सूर्य के घोड़े
हि कं…भी ही
हुत…बुलायाहुआ,हवन किया गया
हविष्मतः…हविः लिये
हिरण्ययः…सुवर्ण का
हरितः…घोड़े वाले
हर्य…स्वीकारकर(प्रति)
हिरणमयेन..सोने के बने हुये
हव्या…स्तुति किया जाता है

क्ष

क्षामा…पृथिवी
क्षोणी…पृथिवी
क्षितयः…मनुष्य
क्ष्मः…भूमि

☞ यजुर्वेद के ४० अध्याय के शब्दार्थ तीसरी वेद पुस्तक में देखो
ऋग्वेद १० मंडल १२१ सूक्त के शब्दार्थ चौथी वेद पुस्तक में देखो

॥ शुद्धिपत्र ॥

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०	२	आवस्यं	आवास्यं	४२	२०	स	सह
४१	१	उभय	उभयं	७०	२१	डूवतो	डूवो
				७१	८	जाव	जीव

विषय सूचिः

विरजानन्द यंत्रालय लाहौर

MASTER DURGA PRASAD'S

BOOKS FOR SALE

AT VIRJANAND PRESS, LAHORE.

	R.A.P.
THE WAY TO GOD (practical yoga both Eastern and Western)	0 2 0
PRASHNA UPANISHAT, text with English translation	0 2 0
A REPLY TO MR. AGNIHOTRI, examination of Brahmoism.	0 1 0
BHOJAN VIDHANAM in Hindi, a dissertation on food & drink question with invigorating domestic recipes	0 4 0
NITI SANGRAH OR MORALS, Sanscrit text with Hindi and English translation, and glossary of words	0 4 0
CHANAKYA NITI OR MORALS, Sanskrit text and English translation separate each	0 4 0
SECOND HINDI BOOK for children, translation of Æsop's fables	0 1 0
ENGLISH READERS FOR BEGINNERS, useful for essay writing, Nos. 2-3-4 and a poetical reader, original price Rs. 1-8-0, reduced price of all............	0 4 0
VEDIC READERS No. 1 to 7, for self study, 280 Veda Mantras, complete hymns and chapters of all Vedas, text, meanings of words and translation in Hindi, again, in Roman characters, English translation with meanings of words, explanatory notes, some verses from Manu with translation, and Vernacular and Sanscrit songs with meanings, original price Re. 1-8-0 reduced price	1 0 0
FIVE GREAT DUTIES or Prayer book prepared in the same way as above	0 4 0
SWADHYA MANJARI, giving 9[?] Rigveda Hymns & 40th chap. of the Yajurveda showing the crowning doctrines of the Vedas, translated and explained in Hindi verse, a delightful reading, pages 144, Price...	0 8 0
VEDAS MADE EASY, or a literal translation of the Vedas for self study, Sanscrit text, English translation with meanings of words, explanatory notes, again easy Sanscrit commentary on the same with its English translation, and then on a Rishi's hymns being finished, their Exposition in English, which gives their import in a nutshell giving contents, concordance, and replying to all objections to the Vedas systematically. Price of each chapter of Rigveda, pages about 120 or so Re.	1 4 0
INTRODUCTION to the above Commentary, pages 277, bound giving a bird's eye view of the cardinal doctrines of all the Vedas, Price Rs.	3 4 0

WORKS OF DR. J. M. PEEBLES, M. A., M. D., PH. D.

Bound Exquisitely in Blue Silk and Gold Embossing.



FIVE JOURNEYS AROUND THE WORLD. Profusely illustrated, pp 555..$ 1.75

SPIRIT MATES, MARRIAGE, DIVORCE AND RE-UNIONS: Origin of Spirit..$1.15

IMMORTALITY AND FUTURE HOMES —What a 100 Spirits say 1.15

DEMONISM OF THE AGES AND SPIRIT OBSESSIONS..................$1,25

THE CHRIST QUESTION SETTLED.—All about Jesus. Was he a myth?..$1-25

WHAT IS SPIRITUALISM AND WHO ARE THESE SPIRITUALISTS? $1.00

DEATH DEFEATED; or the Psychic Secret of How to Keep Young,..$1.00

PATHWAY OF THE HUMAN SPIRIT TRACED-Nature of Spirit $1.00

BIOGRAPHY OF DR. PEEBLES. By Professor E. Whipple, pp 600 $1.50

VACCINATION A CURSE AND MENACE TO PERSONAL LIBERTY...$1.00

SEERS OF THE AGES,-A comprehensive treatise on Spiritualism $1 00

SPIRITUALISM VERSUS MATERIALISM, DARWINISM, AND AGNOSTICISM..$0 40

PAMPHLETS IN PAPER BINDING.

HOW TO CONVERSE WITH THE SPIRITS OF THE DEAD....................25 c.

REINCARNATION PRO AND CON.—A discussion by Peebles, Colville..35 c.

BUDDHISM AND CHRISTIANITY FACE TO FACE....................35 c.

SPIRITUALISM IN ALL LANDS AND TIMES....................10 c.

ORTHODOX HELL, CHURCH CREEDS AND INFANT DAMNATION......10 c.

PROOFS OF IMMORTALITY,—Its naturalness & possibilities...10 c.

SPIRITUALISM PRO & CON—Debate between Dr Peebles & a minister..10 c.

GENERAL TEACHINGS OF SPIRITUALISM —Its philosophy and religion..10 c.

NINETY YEARS YOUNG AND HEALTHY— HOW AND WHY.........25 c.

DID JESUS CHRIST LIVE?—What history and Jewish scholars say..15 c

Apply to PEEBLES PUBLISHING CO.,

5719 FAYETTE STREET, LOS ANGELES, CAL. U. S. A


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथि.................
पु०सं०...............
मार्गदर्शी पुस्तकालय


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु०सं०
भारती पुस्तकालय

